अखण्ड ज्योति

MURARI ART AGRA

सुधा बीज बोने से पहले, कालकूट पीना होगा ।
पहिन मौत का मुकुट, विश्व-हित मानव को जीना होगा ॥

मूल्य १॥)　　संपादक—श्रीराम शर्मा ।

२　　मथुरा, २० अप्रैल सन् १९४१　　अङ्क ४

यह शरीर ही ईश्वर नहीं है !

कहने को तो हम लोग रोज ईश्वर ईश्वर रटते हैं, पर असल में शरीर को ही ईश्वर मानते हैं। दिन रात
जो काम करते हैं उन पर बारीक दृष्टि डालें तो पता चलता है कि चौबीस के चौबीसों घंटे शरीर की पूजा में
ते हैं। शाम को अपनी कमाई पर गौर कीजिये, यह सब शरीर सुख के लिये प्राप्त किया गया है। धन-दौलत
ट्ठा करना हमारा आराध्य विषय है। षट्रस व्यंजन, बढ़िया कपड़े, ऊँचा मकान, कीमती सवारी, सुन्दरी सेविका,
ये सब तो हमें प्रिय हैं। इन्हीं के लिये सारा प्रयत्न होता है। सारा का सारा समय शरीर की पूजा में लगता है।
द्ध जैसे कितना ही ऊँचा उड़ जाय पर दृष्टि मुर्दा मांस पर ही रखता है। इसी प्रकार हम चाहे जितनी बढ़ बढ़ कर
तें करें, पर दृष्टि शरीर पर ही रहती है।

अभागे मनुष्य ! यह शरीर अमर नहीं है। इसके सुख भी सदा नहीं भोगे जा सकते । विश्व में कोई
र सदा नहीं जिया। मौत के दाँतों में लटके हुए आदमी ! यह शरीर कल ही नष्ट होने वाला है । यह ईश्वर नहीं
इसकी ईश्वर जैसे पूजा मत कर। हाड़ माँस की उपासना करने वाले मूर्ख ! अपने अन्त को देख ! संसार में
यु ही सत्य है। यह शरीर नाशवान है। मनुष्यो ! भूलो मत– यह शरीर नाशवान है। इस मल मूत्र की गठरी
ईश्वर मत मानो। स्वार्थ से कुछ ऊँची दृष्टि उठा कर परमार्थ की ओर भी देखो। अपने अन्धकार मय भविष्य
भी चिन्तन करो।

अखंड ज्योति के नियम

(१) अखण्ड-ज्योति का वार्षिक मूल्य १॥) और एक प्रति का ≈)। है। मूल्य मनीआर्डर से भेजना चाहिए। वी० पी० मँगाने पर ।–) अधिक देने पड़ते हैं।

(२) उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकिट भेजना चाहिये अन्यथा उत्तर न दिया जायगा।

(३) नये ग्राहकों को जनवरी या जून से ही ग्राहक बनना चाहिये, बीच में ग्राहक बनने वालों को पिछले अङ्क भेज दिये जावेंगे। पिछले अङ्क न मँगा कर चालू मास से ही ग्राहक रहना पाठक की इच्छा पर निर्भर है। जैसी रुचि हो लिख देना चाहिये।

(४) अखण्ड ज्योति के मूल्य में कमी करने के लिये पत्र व्यवहार करना व्यर्थ है। एक वर्ष से कम के लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते।

(५) अखण्ड ज्योति प्रति मास ठीक २० तारीख को निकल जाती है। अपने यहाँ से दो बार जाँच कर ग्राहकों के पास भेजा जाता है। परन्तु कभी-कभी डाकखाने की गड़बड़ी से अङ्क पाठकों को नहीं मिलते। ऐसी दशा में रुष्ट न होकर डाकखाने से पूछताछ करनी चाहिये और उसका उत्तर लिखते हुए अङ्क दुबारा मंगा लेना चाहिये।

(६) स्वीकृत लेख सचित्र भी छापे जा सकेंगे, यदि लेखक ब्लाक भेज देंगे या उसका प्रबन्ध कर देंगे।

(७) पुस्तकों का मूल्य भी मनीआर्डर से भेजना चाहिये। वी० पी० मंगाने पर ।≡) अधिक देने पड़ेंगे। १) से कम मूल्य की पुस्तकों की वी० पी० नहीं भेजी जाती।

(८) पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

पत्र व्यवहार का पता—

मैनेजर—"अखण्ड-ज्योति" कार्यालय, मथुरा।

❀ विषय सूची ❀

[आ]त्म बुद्धि (कविता) श्री जिज्ञासु	२	प्रसन्न रहने के उपाय—	२१
[ध]र्म की रक्षा करो-(संपादकीय)	४	दुखों का बाप ममत्व—श्री अगरचन्द नाहटा	२३
[वे]दों का अमर संदेश—डा० कौशिक	६	पूरी सांस—श्री नारायण प्रसाद तिवारी	२६
[प्र]ार्थना का गुप्त रहस्य—श्री० धर्मपालसिंह जी	७	जय योग—पं० भोजराज शुक्ल	२७
[तु]च्छ स्वार्थों को छोड़िये—म० जेम्स ऐलन	१०	कुसुम चयन—	२८
[प्रे]म दर्द—रानी चन्द्रकुमारी देवी	११	क्या यह सच है ?—	२९
[ई]श्वर भक्ति का मार्ग—स्वामी रामकृष्ण परमहंस	१३	कर्तव्य पालन—श्री० आनन्द कुमार चतुर्वेदी	३०
[वि]चारों का प्रचंड बल—डा० भगवान स्वरूप	१४	पवित्रता—पं० तुलसीराम शास्त्री	३०
[उ]ठो, पुरुषार्थ करो—योगिराज उमेशचंद्र जी	१५	समय—श्री० मंगलचंद भंडारी	३०
[र]क्षा के लाभ—रामस्वरूप जी 'अमर'	१७	माता और बेटा—श्री० गिजू भाई	३१
[इ]न्सान पर शैतान की छाया—सी० ई० एम० जोड	१९	समालोचना, कविता कुंज	३२

मनुष्य को देवता बनाने वाली पुस्तकें !

जो ज्ञान युगों के प्रयत्न से मिलता है—उसे हम अनायास ही आपके सन्मुख उपस्थित करते हैं।

यह पुस्तकें बाजारू किताबें नहीं हैं। इनकी एक-एक पंक्ति के पीछे गहरा अनुभव और अनुसन्धान है। विनम्र शब्दों में हमारा दावा है कि इतना खोज पूर्ण, अलभ्य साहित्य इतने स्वल्प मूल्य में अन्यत्र कहीं भी नहीं मिल सकता।

(१) **मैं क्या हूँ ?**—आत्म साक्षात्कार करने के कुछ साधन। कीमत।≈)

(२) **सूर्य चिकित्सा विज्ञान**—सूर्य की प्रचंड रोग नाशक शक्ति द्वारा द छिन रोगों की चिकित्सा कीमत।≈)

(३) **प्राण चिकित्सा विज्ञान**—मनुष्य शरीर की बीमारियों को बिजली द्वारा अच्छा करना। कीमत।≈)

(४) **पर काया प्रवेश**—आत्म शक्ति को दूसरे के शरीर में प्रविष्ट करके उसे इच्छानुसार चलाना। कीमत।≈)

(५) **स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या**—आध्यात्मिक सरल साधनों से तन्दुरुस्त और खूबसूरत बनने के उपाय। कीमत।≈)

(६) **मानवीय विद्युत के चमत्कार**—शरीर की बिजली से कैसे-कैसे आश्चर्यजनक कार्य होते हैं इसका वैज्ञानिक विवरण। कीमत।≈)

(७) **स्वर योग से दिव्य ज्ञान**—स्वरोदय विद्या द्वारा गुप्त और भविष्य की बातों को जान लेना। कीमत।≈)

(८) **भोग में योग**—शीघ्रपतन, स्वप्नदोष, नपुंसकता आदि विकारों को योग साधनों से दूर करने की शिक्षा। ।≈)

(९) **बुद्धि बढ़ाने के उपाय**—बुद्धि को तीव्र करने, स्मरण शक्ति को उन्नत करने के सरल उपाय। कीमत।≈)

(१०) **धनवान् और विद्वान् बनने के सिद्धान्त**—मनुष्य चाहे कैसी ही बुरी परिस्थिति में क्यों न हो, इन उपायों द्वारा धनी और विद्वान् बन जायगा। कीमत।≈)

(११) **इच्छानुसार पुत्र या पुत्री उत्पन्न करना**—वन्ध्यापन निवारण और मन चाही सन्तान उत्पन्न करने की विधि। कीमत।≈)

(१२) **वशीकरण की सच्ची सिद्धि**—ऐसे सद्गुणों की शिक्षा जिनके द्वारा दूसरों के हृदय को जीत कर वश में किया जा सकता है। ।≈)

(१३) **मरने के बाद हमारा क्या होता है ?**—मृत्यु के उपरान्त प्रेत होने, स्वर्ग नरक में जाने, जन्म लेने आदि की खोजपूर्ण चर्चा। ।≈)

(१४) **क्या धर्म ? क्या अधर्म ?**—दार्शनिक, व्यावहारिक और वैज्ञानिक दृष्टि से धर्म की मीमांसा। कीमत।≈)

(१५) **गहना कर्मणो गति**—दुष्ट लोग सुखी और धर्मात्मा दुखी क्यों देखे जाते हैं ? कर्म फल कैसे मिलता है ? भाग्य क्या है ? आदि का तात्विक दर्शन। मूल्य।≈)

(१६) **ईश्वर कहाँ है ? कौन है ? कैसा है ?**—ईश्वर के स्वरूप और उसकी उपासना का मर्मभेद। ।≈)

नं० ८ तक की पुस्तकें छपकर तैयार हैं। शेष अगस्त सन् ४१ तक छप कर तैयार हो जाँयगी।

इन पुस्तकों की एक-एक प्रति अपने पास जरूर रखिये।

पता—**मैनेजर 'अखंड ज्योति' कार्यालय, मथुरा।**

धन्यवाद

अखण्ड ज्योति के ज्ञान प्रसार कार्य में सहयोग देना धर्म कर्त्तव्य समझ कर इस मास निम्न महानुभावों ने ग्राहक बढ़ाने का विशेष प्रयत्न किया है। इन सज्जनों के प्रति अखण्ड ज्योति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती है।

(१) पं० त्रिलोकीनाथ तिवारी, खरसिया बी० एन० रेलवे
(२) श्री० धर्मपाल सिंह जी बरला, मुजफ्फर नगर
(३) श्री० टी० एम० पंडित, शुक्रवार पेठ, पूना
(४) बाबा गोपालदास जी महाराज, बेटा गाँव, मुरादाबाद
(५) बा० सूर्यनारायण वाशिष्ठ बी. ए., एल. एल. बी. शिकारपुर
(६) महन्त शंकरानन्द ब्रह्मचारी, शाक्तमठ, गन्नूर
(७) श्री मन्नीलाल रतनचन्द जी, पालनपुर
(८) श्री० चिन्तामणि जी पाण्डेय, कन्ट्रैक्टर लखनऊ

अखण्ड ज्योति

MURARI ART AGRA

सुधा बीज बोने से पहले, कालकूट पीना होगा।
पहन मौत का मुकुट, विश्व-हित मानव को जीना होगा।

भाग २] मथुरा, २० अप्रेल सन् १९४१ [अंक ४
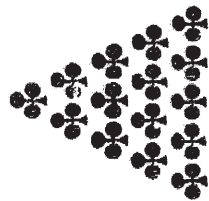
आत्म बुद्धि

(श्री० जिज्ञासु)
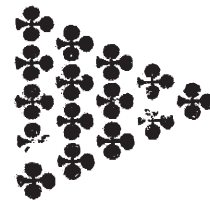
"—वह पापी है दुष्ट नराधम, उसके पास न जाना।
उसे देखना छूना मानो, शिर पर पाप चढ़ाना॥"
"—भाई सच कहते हो, लेकिन, पावन किसका तन है?
रक्त माँस मल मूत्र आदि से, रहित कौनसा जन है?
आत्मा तो सब की समान है, सुन्दर शुचि अविनाशी।
सब में सदा समान बिराजें, शाम् कर घट घटवासी।"
"—कर्म बुरे करता है" लेकिन, 'गहन कर्म गति' भाई।
क्या अच्छा क्या बुरा न परिभाषा इसकी हो पाई॥
मानव की अपूर्ण प्रज्ञा-क्या, बेचारी ने जाना।
कुछ आसान नहीं है जग में, 'बुरा भला' बतलाना॥
प्रभु के इस पावन प्रांगण में, किसको दोष लगाऊँ।
उसकी पुण्य पूत कृतियों को, कैसे बुरा बताऊँ॥

× × × ×

किससे द्वेष करूँ? किससे बदला लूँ? किसको मारूँ?
किसे विपक्षी समझूँ? किसकी सेना को संहारूँ?

अखण्ड ज्योति

सुधा बीज बोने से पहले, काल कूट पीना होगा।
पहिन मौतका मुकट, विश्व-हित मानवको जीना होगा॥

मथुरा, २० अप्रेल सन् १९४१

धर्म की रक्षा करो

नवीन सभ्यता की यह आवाज है कि हमें अपनी उन्नति करने के लिये आर्थिक और बौद्धिक उन्नति करनी चाहिए, संगठन करना चाहिए। धर्म मार्ग की कड़ी आलोचना करते हुए कहा जाता है कि यह तो अफीम की गोली है, जिसे खाकर मनुष्य अपनी बुद्धि खो बैठता है। यह तो पंडे पुजारियों का पेशा है, जो लोगों को बहका कर अपना उल्लू सीधा करते हैं।

उपरोक्त विचार किसी एक मनुष्य के नहीं है, वरन् एक तीव्र विचार धारा है, जो दिन-दिन प्रबल होती जाती है। युग का प्रवाह या नास्तिकों का प्रलाप कह कर इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। हमें विचार करना है कि इन बातों में कितना तथ्य है। सनो वैज्ञानिक दृष्टि से जब हम बारीकी के साथ इस सम्बन्ध में विचार करने बैठते हैं, तो प्रतीत होता है कि इस युग की धार्मिक बगावत वस्तुतः धर्म तत्व के विरुद्ध नहीं वरन् उसके साथ मिल जुल गये, पाखंड के विरुद्ध है। हिन्दू जाति धर्म प्राण रही है और उसमें उदारता की मात्रा का समावेश अत्यधिक रहा है, इसलिये हिन्दू धर्म के अन्दर अनेक पंथ, उपपंथ, बढ़ते रहे और सब प्रकार हितकर अहित कर रीति रिवाजें पनपती रहीं। देवदासी प्रथा (लड़कियों को नाचने के लिए मन्दिरों को दान करना) सखी सम्प्रदाय (भक्ति के नाम पर पुरुषों का स्त्री रूप बनाना) जीव बलि प्रथा (पशु पक्षी तथा मनुष्यों तक की बलि देना) तान्त्रिकों के विकृत भैरवी चक्र (मद्य, मांस, मैथुन, धन संग्रह आदि में ही लिप्त रहना) जैसे कार्य जब धर्म का आवरण ओढ़ कर फले फूले तो स्वाभाविक है कि उनकी गंदगी उस तालाब को ही गन्दा करदे, जिनमें से उनका उद्भव होता है। शताब्दियों का यह घपला अब धर्म के शुद्ध स्वरूप में मिल कर कुछ ऐसी विकृत दशा में सर्व साधारण के सामने आता है कि स्थूल दृष्टि डालते ही उससे घृणा होने लगती है। मन्दिर मठों में होने वाले दुराचार, साधुओं का बेश धारण किये हुए असंख्य हरामखोर बदमाश, धर्म पुण्य के नाम पर स्वार्थ साधन के लिए अज्ञान जनता से हड़पी जाने वाली धन राशि, ज्योतिष भविष्य कथन आदि के नाम पर होने वाला भ्रम, प्रचार साम्प्रदायिक कलह, दंभियों के संगठित षडयन्त्र, जब नग्न रूप से जनता के सामने आते हैं, तो उनके अप्रबुद्ध मस्तिष्कों में धर्म का यही चित्र अंकित हो जाते हैं और यह बिलकुल स्वाभाविक है कि हर विचारशील एवं सहृदय व्यक्ति उनसे घोर घृणा करे। धर्म के विरुद्ध उठी हुई इस युग की प्रचण्ड बगावत की आदि कारण वे पाखण्ड हैं, जिन्होंने धर्मके पवित्र गंगाजल को गंदली कीचड़ का रूप दे दिया है। पेट में जब बगावत खड़ी होती है, दस्त लगते हैं, तो दूषित भाग के साथ श्रेष्ठ तत्व भी बाहर फेंक दिये जाते हैं, सूखे के साथ गीला भी जल जाता है, गेहूं के साथ घुन भी पिस जाता है। दुनियां के तीन चौथाई से अधिक मनुष्यों के मस्तिष्क पर अधिकार जमाये हुए धर्म विरोधी भावनाओं का यथार्थ कारण यही है।

धर्म के शुद्ध स्वरूप में बगावत के लिए रत्ती भर भी स्थान नहीं है। विरोध उसमें हो नहीं सकता। मनुष्य जाति की सामाजिक व्यवस्था को ठीक बनाये

रहने वाली श्रृंखला केवल धर्म ही हो सकता है। धार्मिक भावनायें मनुष्य के हृदय में स्वार्थ का त्याग और परोपकार वृत्ति का बीजारोपण करती हैं। संसार के समस्त कलह और दुख द्वन्दों का कारण स्वार्थ की अनुचित साधना है। धर्म से विमुख हो कर मनुष्य स्वार्थ सिद्धि को ही अपना इष्ट बना रहे हैं। संसार में वस्तुऐं एक नियत मात्रा में हैं, वे उतनी रहती हैं, जितनी से प्राणियों का उचित पालन पोषण हो सके। यदि सभी अपने-अपने भाग का उपभोग करें, तो विश्व की शान्ति स्थापित रहेगी, समाज की सारी व्यवस्था बड़ी सुविधा पूर्वक चलती रहेगी। किन्तु मनुष्य स्वभाव में अकसर पशुता का उदय होता है, वह अपने लिये बहुत चाहता है और दूसरों को कुछ नहीं देना चाहता। दूसरों को कष्ट-कारक स्थिति में धकेल कर अपने लिये अधिक सुख सुविधायें एकत्रित करता है, फल स्वरूप दूसरे लोग अभाव से दुखी रहते हैं और जब उनमें प्रति क्रिया उत्पन्न होती है, तो प्रति शोध लेने के लिए तत्पर हो जाते हैं, तदनुसार कलह का सूत्र पात होता है। हम समाज के अधिकांश भाग को दुखी पाते हैं और उसमें कलह के बड़े नृशंस दृश्य देखते हैं। सारा संसार इन हाहाकारों से पीड़ित हो रहा है। सच्चे धर्म से बिमुख होने का यही तो निश्चित परिणाम है।

धर्म की विपद् विवेचना का तत्व ज्ञान यह है कि "मनुष्य अपनी सुविधाओं का दूसरों के सुख के लिये खुशी खुशी परित्याग करे।" यह भावनाऐं जितनी-जितनी अधिक दृढ़ होती जाती हैं उतना ही मनुष्य उदार होता जाता है अपने सुख की अपेक्षा दूसरों की सुविधा का उसे विशेष ध्यान रहता है। आनन्द एक कल्पित चीज है, उसका आरोपण जिस वस्तु में कर लिया जाय, उसी में वह प्राप्त होने लगता है। स्वार्थ साधन में आनन्द आता है, पर जब उसका आरोपण परमार्थ में कर लिया, तो पर मार्थ में भी स्वार्थ के समान ही आनन्द आने लगता है। वह आनन्द नामक पदार्थ जिसकी प्राप्ति के लिये स्वार्थ साधन किया गया था, जब धार्मिक भावनाओं के कारण परमार्थ में भी प्राप्त होने लगता है, तो वह समस्या हल होने लगती है, उसके कारण संसार नरक बना हुआ है। इतिहास में ऐसे उदाहरण हैं कि कुछ शासकों की स्वार्थ भावनाऐं राज्य के लिये अपने सगे भाइयों तक हत्याएँ कराती हैं। इसके विपरीत जब राम और भरत दोनों ही त्याग की भावनाओं से परिपूर्ण होते हैं, तो वह राज्य तुच्छ वस्तु बन जाता है, दोनों के जीवन में आनन्द का अविरल स्रोत फूट निकलता है। एक भाई राज्य को दूसरे भाई को खुशी खुशी देना चाहता है, दूसरा उसे उसी के लिये अर्पण करता है। कैसा स्वर्गीय दृश्य है। जिन पति पत्नियों में, मित्र मित्रों में, इस प्रकार की भावनाओं के कुछ अंश देख पड़ते हैं, वहाँ कितनी पवित्र प्रेम की धारा बह निकलती है। शांति और सुव्यवस्था का मेरु दण्ड यही विचार धारा है, जिसे धार्मिक भावना के नाम से पुकारा जाता है।

नवीन सभ्यता धार्मिक आडम्बरों की बगावत करते हुए उसके सत्य तत्व का भी बहिष्कार कर देती है, उसका मुँह त्याग की अपेक्षा स्वार्थ की ओर मुड़ जाता है। तदनुसार कलह की दारुण विभीषिकाऐं सामने आ खड़ी होती है। जहाँ स्वार्थ की प्रधानता है, वहां आर्थिक उन्नति, बौद्धिक विकाश और संगठन कुछ भी काम नहीं दे सकते। जरा आज की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर दृष्टिपात कीजिये। राष्ट्र संघ जैसा महान् संगठन बेचारा एक झोंके में उड़ गया। धन धान्य से सम्पन्न, राजाओं जैसा जीवन बिताने वाले व्यक्ति आज भूखे मर रहे हैं और गुफाओं में छिप कर अपनी प्राण रक्षा कर रहे हैं, विज्ञान के आश्चर्यजनक आविष्कार करने वाली बुद्धि आज मृत्यु किरणों और जहरीली गैसों का आविष्कार कर रही है। स्वार्थ की जितनी-अधिकता होती जायगी, संसार में उतने ही नारकीय दृश्य उपस्थित होते जायँगे। जिस दिन धर्म की भावनाओं का बिलकुल लोप हो जायगा, स्वार्थ का पूर्णतः साम्राज्य हो जायगा, उस दिन सर्पिणी की तरह माताएँ अपने बच्चों का मांस पका कर खाने

लगेंगी, बहनें पशुओं की तरह लज्जा और रिश्ता छोड़कर इन्द्रिय परायण हो जायेंगी, मनुष्य शूकरों की तरह अखाद्य खाने लगेंगे और कुत्तों की तरह एक दूसरे की चोटी नोंच नोंच डालेंगे।

हे नवीन सभ्यता के अभिमानियो! अपने तर्कों पर पुनः विचार करो, वस्तु स्थिति को पुनः सोचो, अपने कार्यक्रम का पुनः संशोधन करो। यह मार्ग कल्याण का नहीं है, जिस पर तुम प्रवृत्त हो रहे हो। आर्थिक उन्नति, बौद्धिक विकाश, संघटन तीनों ही बड़ी सुन्दर वस्तुएं हैं परन्तु इनके मूल में धर्म होना चाहिए अन्यथा यह उन्नति विनाश कीतीक्ष्ण तलवारें ही सिद्ध होंगी। धार्मिक रीति रिवाजें वास्तविक धर्म नहीं है। यह तो इसके बाह्य चिह्न हैं, जो समय समय पर बदलते रहे हैं और बदलते रहेंगे। इनमें जो विकृतियाँ आगई हों, जो अङ्ग सड़ गये हों, उन में परिवर्तन करलो। क्योंकि परिवर्तन ही जीवन है। परन्तु थोड़े से विकार के कारण सत्य तत्व की ही अवहेलना मत करो। खटमलों के डर से चारपाई का ही परित्याग कर देना बुद्धिमानी नहीं है।

कई बार यह भी सुनने में आता है कि सामाजिक व्यवस्था अच्छे राज प्रबन्ध से रोकीजा सकती है। उन्हें जानना चाहिये कि व्यवस्था केवल दण्ड से कायम नहीं रह सकती। हर आदमी के पीछे एक २ दरोगा लगा दिया जाय तो भी उससे पूरी तरह कानून का पालन नहीं कराया जा सकता। वह कुछ न कुछ तरकीब निकाल ही लेगा, फिर वे दरोगा भी तो उसी समाज में से होंगे। इसलिये धर्म का परिपालन ही एक ऐसी वस्तु हो सकती है, जिसके द्वारा समाज की शान्ति और व्यवस्था कायम रहे एव सब लोग प्रेम भाव और सुख शान्ति के साथ रहें। बुद्धिमान विचारको! दुखों में सुख का आविर्भाव करने वाले इस महान तत्त्व को नष्ट मत करो, इस से बगावत मत करो। शास्त्र कहता है—'धर्म एव हतो हन्ति रक्षे रक्षित रक्षतः।' धर्म की रक्षा करने से तुम्हारी रक्षा होगी और धर्म के नष्ट होने पर तुम भी नष्ट हो जाओगे।

वेदों का अमर संदेश

अति क्रामन्तो दुरिता पदानि। शतं हिमाः सर्वे वीरा मदेम। अथर्व १२। २। २८

मन से दुष्ट विचारों को दूर करना चाहिए। अच्छे निर्भय और धैर्य मय विचारों को अपने मन में धारण करना चाहिए और सौ वर्ष तक वीर पुरुषों के साथ आनन्द से जीवन व्यतीत करना चाहिए।

कव्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रं। आयुर्दधानाः प्रतरं नवीयः। अथर्व १२। ३। १७

जो मनुष्य अपनी आयु पुरुषार्थ से बढ़ाते हैं। और अपने आपको ईश्वर की भक्ति से पवित्र बनाते हैं उनके दोष दूर होजाते हैं।

अप्यायमानाः प्रजया धनेन। शुद्धाः पूता भवत याज्ञियासः। ऋग० १०। १८। २

संतान और धन प्राप्त करके, सबको अपनी उन्नति करनी चाहिए। अन्दर से बाहर से और सब प्रकार से शुद्ध पवित्र और निर्दोष बनकर श्रेष्ठ बनना चाहिए।

अजैष्माद्यासनाम चाभूमाऽनागसो वयम्।

ऋग्० १०। १६४। ५

सब से पहले हमको निर्दोष बनना चाहिए। पश्चात परस्पर प्रेम का वर्ताव करना चाहिए जिससे विजय और यश प्राप्त हो।

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वाऽतितृण्णं बृहस्पतिर्मेतद्दधातु। यजु ३६। २

अपनी इन्द्रियों और अवयवों में जो, जो दोष होंगे वे ईश्वर की कृपा से दूर हो सकते हैं। मनुष्यों को उचित है कि वे ज्ञानी गुरु के पास जावें उनकी सहायता से अपने दोषों को दूर करें और पवित्र बनें।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।

यजु ३६। १८

सब प्राणियों को मित्र दृष्टि से देखना चाहिए, किसी से द्वेष नहीं करना चाहिए किसी को भी दुख नहीं देना चाहिए और प्राणी मात्र से प्रेम करना चाहिए।

प्रार्थना का गुप्त रहस्य

(प्रे०-श्री धर्मपालसिंह जी, एस० एस० ए० बरला)

संसार के सभी जीव किसी न किसी रूप में उस सच्चिदानन्द परम पावन पिता को अपनी वाणी में याद करते हैं और इस संसार रूपी संग्राम भूमि में सभी अपने अपने स्वभावानुसार किसी न किसी उद्देश्य की प्राप्ति के प्रयत्न में लगे हुए हैं। जब अपनी सब शक्तियाँ (शरीर बल, बुद्धिबल, मित्र बल, धन बल आदि) का प्रयोग करके भी उद्देश्य पूर्ति में असमर्थ हो जाते हैं तब निराश होकर संसार की एक गुप्त शक्ति को अपनी अपनी भाषा में पुकार उठते हैं। हे राम! अल्लाह! ओ माई गाड! यह वेदना पूर्ण सम्बोधन एक अन्तिम सहायतार्थ किया जाता है। इसी को प्रार्थना' प्रेयर आदि आदि नामों से कहा जाता है। प्रार्थना संसार के प्रत्येक धर्म का आवश्यक अङ्ग है और मनुष्य जीवन की उन्नति का एक उत्तम साधन है, अपार दुःख सागर से निकलने के लिए एक सहारा है, इस में वह अनन्त शक्तियाँ हैं जिसके आगे कुछ असम्भव नहीं है, परन्तु यह सब प्रार्थी की दशा पर निर्भर है। संसार में प्रार्थना विशेषतया निम्न तीन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की जाती है। (१) केवल सांसारिक लाभ, अन्न, धन, वस्त्र, रोग-निवृत्ति के लिए। (२) मानसिक, बौद्धिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए। जैसे काम, क्रोध, चिन्ता, ईर्षा, मानसिक कुभावों पर विजय पाने, आत्म उन्नति एवं आत्मा क्या है, वह कहाँ से आया है, कहाँ जायगा इत्यादि गूढ़ विषयों का बुद्धि द्वारा समझने के लिए तथा आत्म अनुभव प्राप्त करने के निमित्त की जाती है। (३) इस में प्रार्थी कुछ नहीं चाहता, केवल परम दिव्य स्वरूप के प्रेम और ध्यान में निरन्तर लीन रहने, प्रभु से मेल और एक होने की परम चाह रखता है।

यह प्रार्थनाएं स्वार्थ सिद्धि और परमार्थ सिद्धि दोनों तरह से की जा सकती हैं। प्रार्थना का उत्तर मिलना न मिलना यह सब प्रार्थी की अवस्था पर निर्भर है। जो मनुष्य पुण्य कर्मी, प्रबल इच्छा शक्ति वाले और निष्काम हैं, उनकी प्रार्थना कभी निष्फल नहीं जाती और जो इसके विपरीत स्वार्थी, कुकर्मी एवं निर्बल धारणा वाले होते हैं, उनकी प्रार्थना अकसर निष्फल जाती है। प्रार्थना का उत्तर मिलने की साक्षी से इतिहास भरे पड़े हैं। मुगल सम्राट बाबर अपने पुत्र हुमायूँ के लिए जब वह कठिन रोग से मृत्यु के निकट पहुँच लिया था, उसके जीवन के लिए पिता से अपना जीवन झाड़ में देकर प्रार्थना करता है कि हे स्वामी! हुमायूँ की सारी पीड़ा मुझे दीजिये और उसे रोग मुक्त करके जीवन दान दीजिये। कहते हैं उसी क्षण में हुमायूँ अच्छा होने लगा और बाबर ने उसी रोग में अपना जीवन भेंट कर दिया। द्रोपदी, दमयन्ती, सुकुक्त-गीन आदि २ प्रार्थियों की प्रार्थना का उत्तर मिलने का सबूत हमारे सामने आते हैं। वर्तमान काल में भी इन उत्तरों की कमी नहीं है, प्रति क्षण असंख्य प्रार्थनाओं के उत्तर परम पावन प्रभु की ओर से मिल रहे हैं। सब प्रार्थनाओं के उत्तर दाता सर्व शक्तिमान, सर्व अन्तर्यामी प्रभु ही हैं। जिनके शक्ति, ज्ञान, प्रेम में सब चराचर ठहरे हुए हैं। ऐसे सर्वेश्वर सर्वधर्ता ईश्वर ही हैं जो असंख्य प्राणियों की प्रार्थना सुनते हैं और यथोचित उत्तर देते हैं। जैसे देह में ज्ञानेन्द्रियाँ विषयों के ज्ञान को मस्तिष्क द्वारा आत्मा को बतलाती हैं और फिर उन को इन्द्रियाँ जीव की आज्ञानुसार ग्रहण करती और त्यागती हैं। देह में जिस प्रकार काम करने वाली इन्द्रियाँ और आज्ञा देने वाला जीव है, वैसे ही इस संसार रूपी देह में वह परमत्मा सबका उत्तर देने वाले हैं। यह सब चेतनाएं उनके कार्य को चला रही हैं। अन्तरिक्ष लोक में अगणित चेतनाएं वास करती हैं। उनमें कोई मनुष्य से उच्च दशा में है, कोई नीची। प्रार्थनाओं को सुनती और उत्तर देती हैं इसके अतिरिक्त तीनों लोकों का भौतिक सार द्रव्य

विद्यमान है जो मनुष्य के भावों और विचारों से भावित होता है, जिस से उस में एक प्रकार की कम्पगती होती है जो ऐसे रूप में ढल जाती है, जो एक प्राणी की भाँति काम करती है। मनुष्य उन भावों और विचारों को पूर्ण करके का प्रयत्न करता है, जिससे वह भावित होते हैं। इस प्रकार मनुष्य अपनी इच्छा से आज्ञाकारी जीवों को पैदा कर सकता है, जो अन्तरिक्ष लोक में मनुष्य की प्रसन्नता को पूरा करते हैं। इसके अलावा अन्य सहाय दाता उच्चावस्था वाले लोग जो गुप्त रीति से सहायता देते हैं। जहाँ कहीं सहायता की पुकार सुनते हैं, वहाँ तुरन्त किसी न किसी साधन से सहायता देते हैं। द्वितीय प्रकार की आत्म उन्नति के लिये की गई प्रार्थना उन उच्च अवस्था वाले आध्यात्मिक पुरुषों को आकृष्ट करती हैं, जो उत्साहित जिज्ञासुओं को उत्साह दिलाने और ज्ञान ज्योति जगाने को सदा तैयार रहते हैं। प्रथम प्रकार की सांसारिक वस्तुओं के लिये की गई प्रार्थना अनेक बार पूरी नहीं भी होती देखी जाती हैं। इसका कारण प्रार्थी के पूर्व जन्म के अशुभ कर्मों का फल होता है। वह कितना ही रो २ कर प्रार्थना करे, एक नहीं सुनी जाती क्योंकि होनहार के विपरीत कुछ नहीं हो सकता। जो लोग ऐसी प्रार्थना करते हैं, उनका श्रम बेकार जाता है। अत-एव भौतिक सुख के लिये प्रार्थना करनी बहुत उत्तम नहीं है। क्योंकि भोग में मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है।

प्रेम वह पदार्थ है जो झोपड़ों में स्वर्गधाम और खेतों में नन्दन बन की सष्टि कर देता है।

*　　　*　　　*

कठिनाइयां सच्ची सहायक है क्यों कि वे उस सांचे में हमें ढालती हैं जिसमें से निकला हुआ मनुष्य फ़ौलाद की तरह सुदृढ़ और पुष्प की तरह सुन्दर बन जाता है।

*　　　*　　　*

परमात्मा का सच्चा भक्त वह है जो उसकी बनाई हुई सृष्टि को ईश्वरीय भाव से देखता हुआ उसकी उपासना करता है

आत्म-तिरस्कार का फल

(श्री० स्वेट मार्डेन)

आत्मा के अन्दर कितनी अद्भुत शक्तियाँ भरी हुई हैं इसका बुद्धि द्वारा विवेचन नहीं किया जा सकता, परन्तु हमें जो थोड़ा बहुत अनुभव होता है वह बहुत ही विचार-णीय है। अपने भीतर एक ऐसी शक्ति है जो हमारी आज्ञाओं को मानती है और हमारे विचारों को प्रोत्साहित करके उन्हें मज़बूत बनाती है। यदि इस प्रकार के विचार किये जाँय कि 'हम क्षुद्र हैं, हमारी योग्यता बहुत ही नगण्य है, भला हम क्या कर सकते हैं।' तो इन विचारों को आत्मा अपने स्मृति-पटल पर अङ्कित कर लेगी और उसकी प्रतिध्वनि शरीर के समस्त परमाणुओं में गुञ्जित करती रहेगी तदनुसार सचमुच ही हम उसी तरह के बन जायेंगे जैसाकि अपने बारे में सोचते थे। कंगाली, बीमारी, लाचारी और बेबसी के विचारों को यदि रोज़ रोज़ अपनाया जाय, अपने को इनसे ग्रस्त समझा जाय तो निश्चय ही यह हमारी उपासना से प्रसन्न होकर अपना डेरा हमारे शिर के ऊपर डाल लेंगी और हर वक्त अपना प्रतिबन्ध डालतीं रहेंगी। हम अपने मानस क्षेत्र में जैसा बीज बोते हैं, ठीक वैसे ही पौदे उगा लेते हैं। दुख, द्रोह, कलह और निराशा के बीज बोऐंगे तो अवश्य ही इनकी कँटीली बेलें उग कर चारों ओर फैल जावेंगीं।

हम व्यापार में प्रवेश करते हैं और मन में तरह तरह की आशङ्काऐं पैदा करते हैं 'कहीं घाटा तो न हो जायगा', कहीं पूँजी तो न चली जायगी।' विद्या पढ़ते हैं और पुस्तक उठाते ही झींकते हैं कि 'क्या करूँ मुझे पढ़ने की सुविधाऐं ही प्राप्त नहीं होतीं। किसी कार्य में लगते हैं और मन ही मन दुखी होते जाते हैं 'हाय ! हमारे भाग्य में ही सफलता नहीं है।' इस प्रकार के विचार करने वाला कोई व्यक्ति किसी काम में सफल नहीं हो सकता। उसकी बोई हुई निराशा पर जब फल आते हैं,तो उन्हें असफलता कहा जाता है।

यदि हम अपने को पतित, सामर्थ्यहीन और महत्व रहित समझेंगे तो दुनियां भी वैसा ही समझेगी जो आदमी अपनी बेकदरी करता है दुनियां उसकी जरूर बेकदरी करेगी। संसार में ऐसा एक भी मनुष्य नहीं देखा गया जो अपने आपको, नाचीज़, अयोग्य एवं निकम्मा समझता हुए भी कोई महान् कार्य कर सका हो।

उपनिषद्–प्रसंग

बोझ-ईश्वर पर डालो।

(धर्माचार्य श्रीसच्चिदानन्द जी शास्त्री बदायूँ)

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥

यह उपनिषद् का वचन है। इसके अन्दर बड़े ही मधुर शब्दों में उपासक और उपास्य देव का वर्णन किया है। यहाँ पर उपासक जीव हैं और उपास्य देव परमात्मा है। पहले पहल इसमें परमात्मा के गुणों का वर्णन है। फिर बाद में यह बतलाया गया है कि जीव यदि इसी परमात्मा को अपना आश्रय बनाये और अपने कियेहुये कर्मों को परमात्मा के प्रति सौंप दे तो जीव इस संसार सागर से मुक्त हो सकता अन्यथा इसी संसार के जंजाल में फंसा रह जायेगा अर्थात् जन्मजन्मान्तरों में पड़जायगा और न जाने कितने अनेक जन्मों में वह मोक्ष प्राप्त करे। यह इस उपनिषद् के वचन का सार है।

अब हम इस विषय पर जरा विस्तार पूर्वक विचार करते हैं। पहले पहल इस मंत्र के पहले पद में यह बताया गया है कि वह परमात्मा "अनेजत्" गति रहित है अचल है और दूसरे पद में वह बताया है कि "मनसो जवीयो" मन से भी ज्यादह गति वाला है। यहाँ पर आपस में हमको स्पष्ट विरोधाभास प्रतीत है। भला यह कैसे हो सकता है कि एक जगह अचल और दूसरी जगह गति वाला हो। परन्तु इनका निराकरण इस प्रकार करते हैं कि अपने स्वरूप में तो अचल है परन्तु जब दूसरे के साथ टक्कर खाता हैं तो उसको गति वाला कर देता है। यहाँ पर यह शंका उठती है कि अचल वस्तु अर्थात् जो स्वयं गति शील नहीं है। वह दूसरों को गति शील कैसे बना देती है? बात यह है कि ईश्वर निराकार है। हाँ उसकी कुछेक शक्तियाँ इस प्रकार की हैं जो कि इस जगत में काम करती हैं वे शक्तियाँ जब मन के साथ जुडती हैं तो मन गति शील हो जाता है उस शक्ति को इच्छा शक्ति के नाम से पुकारा जा सकता है। प्रभु की यह शक्तियाँ अवश्य हैं क्यों कि वह निराकार है। इस लिये यह सिद्ध हुआ कि ईश्वर की इच्छा शक्ति मन से ज्यादह वेगवान है। इसी लिये यह इच्छा शक्ति मनको गति वाला बना देती है परन्तु कहने के लिये अविचल यानी अचल है क्यों कि स्वयं यह शक्ति क्रिया नहीं करती और स्वयं करे भी किसके लिये यह संसार परमात्मा की इच्छा मात्र का ही आविर्भाव है। ईश्वर जीवों को उत्पन्न करके उनके ऊपर अपना शासन करना चाहता था और इस संसार को स्थिर रखने के लिये उसने संसार में गति यानी हलचल को रखना आवश्यक समझा था इसलिये उसने संसार मे गति डाली जिससे संसार के अन्दर सदा एक जीवन धारा प्रकाशित रहे। इसलिये वह अपने आप अचल होता हुआ भी उसने संसार को गतिशील किया क्यों कि संसार शब्द का अर्थ ही "गति करना" ऐसा है। तीसरे पद में यह बात बताई गई है कि हमारी इन्द्रियाँ उस तक नहीं पहुँच सकतीं। कारण यह है कि हमारी इन्द्रियों की वृत्तियाँ बड़ी तुच्छ है। जो जो इन्द्रिय जिस जिस भोग के लिये बनी है वह उसी में फंसी रहती है। जिह्वा काम स्वाद लेना आँख का काम देखना, कानका काम सुनना इत्यादि। यह है इन्द्रियों का स्वाभाविक आनन्द लने का विषय। यह इन्द्रियाँ उसी अवस्था में ईश्वर तक नहीं पहुँच सकती हैं कि जब तक कि ये अपने अपने स्वभाव में बनी रहें। परन्तु एक ऐसी भी अवस्था है कि उस अवस्था में आकर ये इन्द्रियां ईश्वर तक पहुंच का कारण बन सकती हैं। वह यह है कि अपने इन्द्रियों के स्वभाव को बदल देना, अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय का जो स्वभाव है उसको बिलकुल शान्त कर देना। तात्पर्य यह है कि एक समाधिस्थ अवस्था में बैठ जाना। यह चीज बड़ी मुश्किल है। किसी

किसी को ही ऐसी अवस्था प्राप्त हो सकती है सबको नहीं। इस लिये सामान्यतः यही कहा जा सकता है कि वह परमात्मा इतना बड़ा है कि यह तुच्छ इन्द्रियाँ उस तक नहीं पहुँच सकतीं।

चौथे पद में यह बताया गया है कि वह भगवान सो गति शील करने वाली वस्तुयें हैं उनको भी लाँघ जाता है। इसका यह स्पष्ट मतलब है कि वह भगवान उनसे भी ज्यादह गतिशील है तभी तो वह उन गति करने वाली वस्तुओं को लाँघ जाता है अन्यथा कैसे लाँघ सकता है। गतिशील वस्तुयें वायु विद्युत इत्यादि हैं जो संसार में गति कर रही हैं। परमात्मा इनको गति कराता है नियम में चलाता है इसलिये ईश्वर का तो ज्यादा गति वाला होना और गति वाले पदार्थों को लाँघना स्वयं सिद्ध है।

पाँचवे पद में यह बताया गया है कि उपरिलिखित गुणों वाला जो परमात्मा है, जीव जो अपने कर्म करता है उस परमात्मा को सौंप दे अर्थात् जो भी कोई कर्म करे प्रभु के लिये करे। इससे उसके अन्दर से स्वार्थ और अहंभावना नष्ट हो जायगी जो कि जीव को मोक्ष दिलाने में बाधक हैं। स्वार्थ और अहं भावना नष्ट होकर जन्मजन्मांतरों के झगड़े से छूट जायगा और सीधा मोक्ष प्राप्त करेगा और जो ऐसा नहीं करेगा वह इसी संसार में फँसा रह जायगा और न जाने कब उसकी मुक्ति होगी। इस तरह से अपने कर्मों को ईश्वर के प्रति सौंप देने से फायदा यह होगा कि उसको अपना भार अपने आप नहीं उठाना पड़ेगा। सारा भार परमात्मा के ऊपर सौंप कर वह निश्चिन्त और सुखी होयगा। उदाहरण की तरह पर जब तक पुत्र अपना साराभार अपने पिता के ऊपर सौंपा रहता है तब तक वह निश्चिन्त और सुखी होता है। परमात्मा को अपने कर्मों को सौंप देने से एक फायदा यह भी होगा कि वह पुरुष जिसने अपने कर्मों को प्रभु के प्रति सौंपा है आत्म उद्देश्य को प्राप्त करेगा अर्थात् आत्म उद्देश्य तो है ही प्रभु प्रति अर्थात् वह पुरुष परमात्मा में ही लीन हो जायगा और अपने जीवन को सफल बनाता हुआ मोक्ष का भागी सिद्ध होगा।

तुच्छ स्वार्थों को छोड़िये

(महात्मा जेम्स ऐलन)

जो व्यक्ति अपने स्वार्थ का परित्याग कर देता है और अपने मिथ्या अभिमान को उठाकर एक तरफ पटक देता है, उसकी सारी पेचीदगियाँ हल होजाती हैं। वह बहुत ही सादा और विनम्र बन जाता है, यहां तक कि कई बार लोग उसे बेवक़ूफ़ तक समझने लगते हैं। इस अवस्था में उस मनुष्य का व्यवहार संसार को परिवर्तनशील घटनाओं पर अवलम्बित नहीं रहता, वरन् वह अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहता है और वही काम करता है जिसे करने के लिए उसकी आत्मा गवाही देती है चाहे इसके फल स्वरूप उसे कितने ही साँसारिक कष्ट क्यों न उठाने पड़ें। जीवन की यही एक ऐसी पवित्र स्थिति है, जिसमें मनुष्य अनुभव करता है कि वह वस्तुतः अमर है।

निस्वार्थ भावना से जीवन व्यतीत करने वाले के लिए संसार में निरुत्साह, पश्चात्ताप और दुख की कोई बात नहीं है। ज़रा सी बात के आवेश में आकर जब लोग मरने मारने पर उतारू हो जाते हैं, वह किसी से नहीं लड़ता बल्कि अपने विरोधियों पर दया और प्रेम की वर्षा करता रहता है। सद्भावना से दिव्य दृष्टि मिलती है। जिसके हृदय में समस्त प्राणियों के प्रति सद्भावना भरी हुई है यथार्थ में वही दिव्य ज्ञान का अधिकारी है। मनुष्यों में देवता वह पुरुष है जो पवित्र है, निस्वार्थ है, प्रेमी है। अपने तुच्छ शारीरिक स्वार्थों का परित्याग करने के उपरांत जो सन्तोष प्राप्त होता है, वह संसार को अपने आधीन कर लेने के सुख से भी हज़ारों गुना अधिक है।

इसलिए आप स्वार्थ को त्यागने का अभ्यास आरम्भ कीजिए। ज्ञान के द्वारा अपनी पाशविक वृत्तियों को काबू में लाने का प्रयत्न कीजिए। सुख और भोग विलासों के गुलाम बनने से इनकार कर दीजिए। नम्रता, भलमनसाहत, क्षमा, दया और प्रेम को अपने अन्दर धारण करने से हृदय के अन्दर शाश्वत शान्ति का आविर्भाव होता है। प्रेम के महान् नियम में अपने को केन्द्रस्थ करना, संतोष, शीतलता, विश्राम और ईश्वर को प्राप्त करने के मार्ग पर पदार्पण करना है।

'प्रेम-दर्द'

(ले०—रानी श्रीमती चन्द्रकुमारी देवी, कटनी)

प्रेम क्या है ? जीवन का इससे बड़ा गूढ़ सम्बन्ध क्यों है ? किस अशान्त शक्ति के अन्तर्गत मनुष्य जाने अनजाने ही इसे तलाश करता है। वह सदा प्रेम की एक गुदगुदी की प्रतीक्षा करता है व मिल जाने पर भी कभी न बिछुड़ने की आशङ्का की व्याकुलता सी अनुभव आती है। प्रेम एक मीठा सा दर्द है जो जीवन का सुरीला तार है, दुखियों की आशा और बियोगियों का आकर्षण तथा थकावट की मदिरा व्यथितों की दवा है जो हृदय में कोमलता भर कर आत्मा पर एक आनन्द का बोझ डाल देता है। जभी तो प्रेमी प्रेम से मतवाला बन कर कहता है—

"दीवाना बनाना है तो दीवाना बनादे।
तुमको भी मुहब्बत कहीं ऐसा न बनादे॥"

इस प्रेम दर्द ने ही शायद दुनियाँ को प्रकृति के कष्ट प्रिय होने का आभास कराया है उन्होंने कहा है कि प्रकृति ने हर सुन्दर वस्तु के साथ इसकी कठिन वस्तु को अवश्य पैदा करके उसका लालित्य नष्ट करना चाहा है। उसने हमें वह प्रेम दिया जो संसार की परम विमोहक वस्तु है साथ ही उसने मनुष्य को निर्दयता भी दी है फिर भी प्रेम निर्दयी को करुण बनाने की ताक़त रखता है यहाँ तक कि मनुष्य क्या प्रभु को भी गज और ग्राह की लड़ाई में गज की प्रेम पुकार में नंगे पाँव दौड़ना पड़ा था—

"हाथी बूड़ो सूंड़ लौं, जब ही करी पुकार।
ग्राह ते आन छुड़ाइया, लगी न रञ्चक बार॥"

भक्ति भी दिल में तब तक नहीं होती जब दिल में प्रेम न हो, सच्चा प्रेम ही भक्ति व भगवान है, स्वर्ग है, प्रेम में बड़ा विचित्र नशा है, उसमें थकावट नहीं है, बड़ी मस्त तबियत रहती है—

प्रेम दिवाने जो भये, मन भयो चकनाचूर।
छके रहें, झूमत रहें, 'सहजो' देख हजूर॥

किस तरह प्रेम में दीवानापन आता है कि आदमी छक जाता है, नशे में चूर हो जाता है, सुधि-बुधि खो देता है, प्रेम के रंग में रँग जाता है, अमीरी गरीबी भूल जाता है, भूख, प्यास और निद्रा खो देता है, अपना पराया भूल जाता है। वहाँ केवल प्रेमी और प्रेम रहता है, कैसा मीठा दर्द है।

"कबहुँ हक धक हो रहे, उठे प्रेम हित गाय।
'सहजो' आँख मुँदी रहे, कबहूँ सुधि होजाय॥"

जीवन में सभी प्राणी किसी न किसी को प्रेम करते ही हैं और उस प्रेम को अपनी-अपनी कसौटी में कसते हैं। बग़ैर प्रेम के कोई जीवित नहीं रह सकता, किसी को भी प्यार करना ही पड़ेगा, नीरस जीवन किसी ने नहीं काटा है। यहाँ उस प्रेम का वर्णन है जिसे हमारे कवि प्रेम-दर्द कह कर अमर करते हुए हमारे हृदय पट खोल गये हैं। प्रेम तो सभी का जन्मसिद्ध अधिकार है—

"प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा प्रजा जेहि रुचे, सीस देय लेजाय॥"

प्रेम में बड़ा दर्द है, प्रेम के नशे में प्रेमी बड़ी जिद्द करता है, प्रेम के बाण लगने का कोई इलाज नहीं है, जिसका बाण ही वही इलाज कर सकता है, तभी तो देवी मीरा बाई कहती है—

"मैं तो प्रेम की दीवानी, मेरो प्रेम न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, सोना किस विधि होय॥
गगन मंडल पर सेज पिया की मिलना किस विधि होय।
घायल की गति घायल जाने जो कोई घायल होय॥
दरद की मारी बन बन डोलूं वैद मिला नहिं कोय।
मीरा की प्रभु पीर मिटेगी वैद संवलिया होय॥"

कितना ऊंचा अकथनीय प्यार था वह भी किस से जिसे कभी न देखा था केवल सुना था, धन्य है।

ऊधो जब योग का सँदेशा लेकर विरहणी गोपियों को समझाने जाते हैं तो गोपी कहती हैं—

"ऊधो ब्रह्म ज्ञान का सँदेशा नहीं देते नेकु,
देख लेते कान्ह जो हमारी अँखियान ते।"

गोपी कृष्ण भगवान के प्रेम में छकी थीं, प्रेम में पीड़िता गोपियों ने एक न सुनी और कैसे अपनी पीड़ा, अपनी दुनियाँ, अपना सर्वस्व इन शब्दों में प्रकट कर संदेश दूत का मुख बन्द कर दिया वह थोड़े शब्दों में सुनिये—

"श्याम तन श्याम मन, श्याम ही हमारो धन,
आठों याम ऊधो हमें श्याम ही से काम है।
श्याम हिये,श्याम जिये, श्याम बिन नाहीं तिये,
अन्धे को सी लाकड़ी आधार श्याम नाम है॥
श्याम गति श्याम मति श्याम ही हैं प्राणपति,
श्याम सुखदाई सो भलाई शोभा धाम है।
ऊधो तुम भये बौरे पाती लेके आये दौरे,
और योग कहाँ यहाँ रोम रोम श्याम है॥

यदि प्रेम की इतनी ऊंची दिव्य विभूतियाँ पैदा न हुई होती तो आज प्रेम की कीमत शायद कुछ भी न होती, जब हृदय प्रेम से विभोर हो उठता है तब उसे कुछ नहीं सूझता, जभी तो कहते हैं कि "प्रेम अन्धा है।"

भक्त सूरदास तो इतने से ही नहीं मानते वे तो अपनी सगाई अपने प्रेमी के साथ नहीं बल्कि प्रेम की सगाई प्रेमी के करके ही चैन पाते हैं—

"सब सों ऊंची प्रेम सगाई।"

दुर्योधन के मेवा त्यागे, साग विदुर घर खाई।
जूठे फल शबरी के खाये, बहु विधि स्वाद बताई॥
प्रेम के वश नृप सेवा कीन्हीं आप बने हरि नाई।
राजसु यज्ञ युधिष्ठिर कीन्हों तामें जूंठ उठाई॥
प्रेम के वश अर्जुन रथ हाँक्यो, भूल गये ठकुराई।
ऐसी प्रीति बढ़ी वृन्दावन गोपिय नाच नचाई॥
सूर कूर इस लायक नाहीं कहँ लगि करों बढ़ाई॥

प्रेम की सगाई ही सब से बढ़ कर निकली जो सब अमीर गरीब दीन दुखी का साथ देकर लज्जा रखते हैं ऐसे जगतपति से किसकी सगाई करने की इच्छा न होगी, कौन पति रूप में इन्हें न वरण करेगा, कौन न अपने जीवननाथ को रिझाना चाहेगा। अपने पति के प्रेम दर्द से केवल पत्नी ही सती होगी व जगतपति पर संसार निछावर हो जायेगा—

किस विधि रीझत हो प्रभु, का कहि टेरूं नाथ।
लहर महर जब ही करो, तबहीं होउँ सनाथ॥

कवियों की सूझ अनौखी ही हुआ करती है। मानव जाति का पता लिया ही करते हैं सो नहीं वे पता लगाते-लगाते जंगल में उड़ गये और वहाँ अपने चंचल नेत्र दौड़ाने लगे व पक्षियों के प्रेम दर्द की भाषा समझ कर सुनाते हैं—

मोर को घनश्याम से प्रेम है जैसे ही वह श्याम घटा देखता है वह गाने लगता है, व हरि का चिंतन करता है तभी तो घनश्याम ने मोर के पङ्ख, मोर का प्रेम, दर्द चिह्न समझ कर शीश पर धारण किया, सच जूठ क्या है पर बात जँचती भी है—

मोर सदा पिऊ पिऊ करत, नाचत लखि घनश्याम।
यासों ताकी पाँखड़ी सिर धारी घनश्याम॥

कवि ने प्रेम की खोज पर जंगल में डेरा जमा लिया, छान बीन कर चकोर को पकड़ लिया और उसकी प्रेम-भाषा को भी प्रगट कर दिया।

"तुलसी ऐसी प्रीति कर, जैसे चन्द्र चकोर।
चोंच झुकी गरदन लगी, चितवत वाही ओर॥

कवि तो आँच पर उतारू होकर जङ्गल की खाक छान रहे थे कि प्रेम का अधिकार मानव को ही है या पशु, पक्षियों, लकड़ी, पानी, दूध को भी है, आखिर तलाश करने वाला सफल हो जाता है, उन्हें पता चल ही गया है कि पपीहा पिऊ को तलाश में बेकरार प्रेम के दर्द से चिल्लाया करता है—

"पपीहा प्रन को ना तजै, तजै तो तन बेकाज।
तन छूटे तो कछु नहीं, प्रन छूटे अति लाज॥"

इसके बाद प्रेम के गुप्तचर भटकने थकते रात्रि को दीपक के उजाले में विश्राम लेना चाहते थे

किन्तु वहाँ भी उन्हें प्रेम रोग दिखाई दिया वे दिल पकड़ कर कहने लगे—

चाहत वह किस काम की अनचाहत के संग।
दीपक मन भावे नहीं जल जल मरत पतंग॥

यहाँ से भी जलते भुनते कुढ़ते नदी के तट पर ठन्डी हवा के झोंको में शांति लेना चाहते थे पर वहाँ भी उन्हें प्रेम मंत्र का जादू दीखा वे सच झूंठ के पानी में गोता लगातार चिल्लाते निकल पड़े।

अधिक सनेही माछरी-दूजा अल्प सनेह।
जबही जलते बिछूरे-तबही त्यागे देह॥

प्रेम के सी. आई. डी. हर जगह अपनी तेज निगाह रखते हैं और पकड़ने में चतुर होते हैं-प्रेमका दर्द अनोखा होता है जो नहीं छुपता। मतलब यही कि जन्म जन्मान्तरों से भक्त कुभक्त मनुष्य पशु पक्षी कीड़े पतिंगे सभी संसार में भिन्न भिन्न प्रेम रोग के दर्द से पीड़ित हैं हैं यही प्रेम का मीठा दर्द है कि प्रत्येक जीव को जीवन चलाने का सुरीला तार है इसमें आशा सुख स्मृति उमंग पीड़ा तेजी के साथ आकर्षण है जभी तो प्रेम दर्द से डारकर कहते हैं।

ये प्रेम वह है कि पत्थर को दम में आब करे।
लगाये दिल वही जिसे खुदा खराब करे॥

जब तक तुम स्वयं अपने उद्धार के लिए कमर कस कर खड़े नहीं होते तब तक करोड़ों ईसा, मुहम्मद, बुद्ध या राम मिल कर भी तुम्हारी रत्ती भर सहायता नहीं कर सकते। इसलिए दूसरों की तरफ मत ताको, अपनी सहायता आप करो।

* * *

विद्वत्ता का सब से बड़ा लाभ यह है कि उसके द्वारा अपनी मूर्खता का ज्ञान हो जाता है।

* * *

जो तुम्हारे साथ शत्रुता करते हैं उनसे प्रेम करो। जो तुम्हारे साथ बुराई करते हैं उनके लिये ईश्वर से कल्याण की प्रार्थना करो।

ईश्वर भक्ति का मार्ग

(स्वामी रामकृष्ण परमहंस के उपदेश)

जिस प्रकार एक भिक्षुक एक हाथ से सितार बजाता है दूसरे से ढोलक बजाता है और साथ ही मुंह से भजन भी गाता जाता है, उसी प्रकार ऐ मनुष्यो, तुम अपना कर्त्तव्य कर्म करो किन्तु सच्चे हृदय से ईश्वर का नाम जपना न भूलो।

जिस प्रकार एक व्यभिचारिणी स्त्री घर के काम काज में लगी होती हुई भी अपने प्रेमी का स्मरण करती है, उसी प्रकार संसार के धन्धों में लगे रहते हुए भी मनुष्यों को ईश्वर का चिंतन दृढ़ता के साथ करते रहना चाहिए।

जिस प्रकार धनियों के घरों की सेविकाऐं उनके लड़कों का पोषण करती हैं और अपने ख़ास पुत्रों की तरह उनको लाड़ प्यार करती हैं किन्तु वे, नौकरानियों के पुत्र नहीं हो जाते। उसी प्रकार तुम लोग भी अपने को अपने पुत्रों के पोषणकर्त्ता समझो, उनका असली पिता तो वास्तव में ईश्वर है।

जिसको उथले तालाब का स्वच्छ पानी पीना है, उसे हलके हाथ से पानी पीना होगा। यदि पानी कुछ भी हिला तो नीचे का मैल ऊपर चला आवेगा और सब पानी गंदा होजायगा, उसी प्रकार यदि तुम पवित्र रहना चाहते हो तो विश्वास और सावधानी के साथ ईश्वर से प्रेम करो। व्यर्थ के विवादों में अपने समय को नष्ट न करो नहीं तो नाना प्रकार की शंका प्रतिशंकाओं से तुम्हारा मस्तिष्क गंदा हो जायगा।

दूसरों की हत्या करने के लिए तलवार और दूसरे शस्त्रों की आवश्यकता होती है, किन्तु अपनी हत्या करने के लिए एक आलपीन ही काफी है; उसी प्रकार दूसरों को उपदेश देने के लिए तो बहुत से धर्म ग्रन्थों और शास्त्रों के पढ़ने की आवश्यकता है किन्तु आत्म ज्ञान के लिए एक ही महा वाक्य पर दृढ़ विश्वास करना काफ़ी है।

जिस प्रकार पतङ्ग प्रकाश को देखकर फिर अँधेरे में आने की इच्छा नहीं करता, चिउँटी चीनी के ढेर में मर जाती है, किन्तु पीछे नहीं लौटती। उसी प्रकार ईश्वर भक्त भी किसी बात की परवाह न करता हुआ परमानन्द की प्राप्ति में अपने प्राणों तक का बलिदान कर देता है।

विचारों का प्रचंड बल

(डा० भगवान स्वरूप वर्मा 'शूल' आन्तरी)

मोटे तौर पर 'विचार' शब्द का अर्थ 'सोचने की क्रिया' किया जाता है। किन्तु आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होने वालों के लिए इसका अर्थ दूसरा ही है, उन्हें 'विचार' का अर्थ सृष्टि करना या रचना करने की क्रिया करना चाहिए। यह विशाल भूमण्डल किसी समय विधाता का विचार मात्र रहा होगा।

संसार में सब से शक्तिशाली वस्तु विचार है। कोई भी विचार अपने अच्छे या बुरे प्रभाव से खाली नहीं है। हृदय में घृणा के विचारों का उदय होने से देह में से एक प्रकार का विष निकलने लगता है, जो चारों ओर फैलता है और पास रहने वालों को हानि पहुँचाता है। इसी भाँति जब प्रेम कृपा या उदारता के विचारों का उदय होता है तो वे अपने निकटवर्ती प्राणियों में सन्तोष और शान्ति फैलाते हैं। सम्माननीय श्री बर्टरेण्ड रसल का मत है कि—विचारों में जैसी फलदात्री शक्ति है, वैसी किसी भी वस्तु में नहीं है। जो व्यक्ति उपकार और उन्नति के संबन्ध में कल्पना या मनन करते रहते हैं, वे अदृश्य रूप से संसार की बड़ी सेवा करते हैं।

विश्व में अनेक सूक्ष्म शक्तियाँ हैं। यद्यपि हम उन्हें आँखों से नहीं देख सकते तथापि उनको स्वीकार करते हैं। हवा आँखों से नहीं दिखाई पड़ती परन्तु उसका होना असिद्ध नहीं है। गर्मी से पानी भाप बन कर आकाश की ओर जाते हुए दिखाई नहीं देता परन्तु फिर भी इस बात को सब जानते हैं, इसी तरह विचारों को खुली हुई आँखों से नहीं देखा जा सकता परन्तु उनकी भी पानी और हवा के समान तरंगें बहती हैं। विचारों की लहरों में एक बड़े गजब की ताकत यह है कि वह अपने समान अन्य विचारों को बड़ी शीघ्रता से खींच कर इकट्ठा कर लेती है। यदि तुम्हारे आँखों में विचारों की लहरों को उड़ते हुए देखने की शक्ति होती तो देखते कि हर एक मनुष्य के मस्तिष्क में से बिजली या वायु की जैसे अगणित लहरें छूट छूट कर आकाश में फैलती जा रही हैं। जब मनुष्य का विचार बदलता है, तभी इन लहरों का रंग रूप भी बदल जाता है। दया की लहरें एक तरह की होंगी तो छल की बिलकुल दूसरी तरह की। हां, एक ही प्रकार के विचार चाहे वे अलग अलग मनुष्यों द्वारा ही भले किये गये हों, उनका रंग रूप बिलकुल एकसा होगा। यह लहरें एकसी होने के कारण आकाश में आगे जाकर आपस में उसी तरह मिल भी जाती हैं जैसे बहुत सी भाप इधर उधर से इकट्ठी होकर बादल बन जाती हैं।

ऊपर बताया जा चुका है कि विचारों में आकर्षण शक्ति होती है और वह अपने सदृश लहरों को तुरन्त ही आकर्षित कर लेती है। हजारों मील दूर उड़ते हुए विचारों को हमारे पास तक आने में शायद ही एक दो सैकिंड लगें, इतनी तेज इनकी चाल होती है! जब तुम्हारे मन में क्रोध के विचार उदय होते हैं, तो उसी तरह के विचार चाहे वे किसी द्वारा इसी समय या हजारों वर्ष पूर्व किये हों, आकाश में से तुम्हारी ओर दौड़ पड़ते हैं और तुम्हारे मस्तिष्क में आकर्षण होने के कारण आकर चिपक जाते हैं, फल स्वरूप क्रोध उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। जो लोग बुरे विचार करते हैं, वो सचमुच कुछ ही समय में बहुत बुरे बन जाते हैं। एक महापुरुष का कथन है कि—'जब तुम कहते हो कि मैं जीव हूँ तब जीव हो और जब कहते हो कि मैं शिव हूँ तो शिव हो।' उसके कथन का तात्पर्य यही है कि जैसा तुम अपने को समझते हो, जैसे विचार करते हो, वैसे ही बन जाते हो।

सम्मिलित रूप से विचार करने पर तो यह शक्ति और भी प्रबल हो जाती है। यदि कई व्यक्ति रोज रोज आपस में बीमारी, मौत, गरीबी, तकलीफ की ही चर्चा करते रहें, तो वे वैसे ही बन जायेंगे। अमुक मर गया' अमुक बीमारी से छटपटा रहा है, अमुक एक एक पैसे को तबाह है, अमुक का शरीर बीमारी से जर्जर हो रहा

है। यदि इस प्रकार की कहानियाँ ही बार बार कही सुनी जाय तो वैसे ही मानस चित्र बनेंगे और वे बीमारी तथा दुख की जीवन घातिनी लहरें अपनी ओर खींचेंगे। फल स्वरूप वैसी ही परिस्थियाँ इकट्ठा हो जायगी और कहने सुनने वाले किसी भयंकर रोग या शोक में फँस जायँगे। यदि ऐसे लोगों के बीच में रहो जो दुख दरिद्र के ही सोच विचार करते रहते हों, तो उनके विचार तुम्हारा भी अनिष्ट किये बिना न रहेंगे।

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक The life ever lasting (अनन्त जीवन) में श्रीमती मेरी कोरेली (Maric corelli) ने उदासीनता निराशा और कायरता के विचारों का भली भाँति दिग्दर्शन कराया है। उसकी कथा के अनुसार कुमारी हरलेण्ड समुद्र तट पर स्वास्थ्य लाभ के निमित्त गई हैं और अपने रोग का कारण अपने ही श्री मुख से एक व्यक्ति से संवाद करती हुई कहती है—" मुझे यह बड़ा अच्छा लगता है कि कोई हमेशा मेरे लिये दुख की सहानुभूति प्रकट करता रहे, दुख दर्शाता रहे, मुझसे धीरज बँधाने वाली बातें कहता रहे। मेरे हृदय में सदा चिन्ता और दुख के विचार उठा करते हैं। दूसरे मनुष्यों के संबन्ध में मुझे यही प्रतीत होता रहता है कि संसार में दुखी मनुष्यों का ही निवास है। वे असहाय पड़े पड़े दुख भोगा करते हैं। जेल खाने में सड़ते हुए कैदी, अस्पतालों में पड़े हुए बीमार, भूख से तड़पते हुए भिखारी, रोते हुए विरही, इन्हीं के चित्र मेरे सम्मुख आते रहते हैं और उन्हीं को देख देख कर मैं रोती रहती हूँ। मुझे प्रतीत होता रहता है कि जीवन में दुखों का ही सागर लहरा रहा है। सुख तो कहीं है ही नहीं।" पाठको! क्या तुम सोचते हो कि इस प्रकार के विचारों में ही लीन रहने वाला व्यक्ति क्या सुखी रह सकता है। उपरोक्त विचार प्रकट करने वाली कुमारी हेरलेण्ड यद्यपि स्वयं नहीं जानतीं कि मेरी बीमारी का असली कारण क्या है परन्तु असल में यही कारण था जो उसने अपने आप कह डाला। विचार अपना एक स्वरूप बनाते हैं और वह अपना असर पहले पहले अपने बनाने वाले पर करता है। कहते हैं कि बिच्छू जब अपनी माँ के पेट में होता है तो वहा का माँस खाना आरंभ करता है और जब उसे पूरी तरह खा लेता है, तो पेट फाड़ कर बाहर दूसरों को खाने निकलता है, यही दशा बुरे विचारों की है।

एक समय राल्फ बोल्डो ट्राइन के साथ एक बड़ा ही मनोरंजन बार्तालाप हुआ। उनके एक मित्र ने उनसे बात चीत करते हुए कहा—मेरे पिता जी हमेशा चिन्ता ग्रस्त रहते हैं। मि० राल्फ ने उत्तर में कहा—" हाँ, मुझे मालूम है कि उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। वे निर्बल, आलसी और दुखी रहते हैं।" यह उत्तर सुनकर मित्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा आपने कभी मेरे पिता जी को न तो देखा है न सुना है फिर कैसे जान लिया कि वे बीमार रहते हैं? राल्फ ने हँसते हुए कहा अभी तुमने ही तो कहा था कि वे चिंतित रहते हैं। मैं जानता हूँ कि जो चिन्तित रहता है उसे अवश्य ही बीमार और दुखी होना चाहिए।

पाप, द्वेष, घृणा, ईर्षा और निराशा की विचार तरंगों में एक प्रकार के प्राण घातक सूक्ष्म जन्तु (Germs) होते हैं। जो मनुष्य की जीवनी शक्ति को खा डालते हैं। फल स्वरूप मनुष्य बीमार पड़ते हैं, दुखी होते हैं और अल्पायु में ही मर जाते हैं। इसके विपरीत प्रेम, उदारता, परोपकार और प्रसन्नता में बिलकुल दूसरी ही बात है। वे न केवल निरोग रखते हैं, वरन् दूसरे सद्गुणों की वृद्धि करके दीर्घ जीवन प्रदान करते हैं। उत्तम विचार करने वाले मनुष्य का रक्त शुद्ध रहेगा और उसकी बुद्धि ऐसी निर्मल रहेगी कि स्वल्प परिश्रम से ही बहुत ज्ञान संपादन कर लेगी।

आध्यात्मिक चिकित्सक अपने विचारों द्वारा ही दूसरों के रोग दूर कर देते हैं। वे रोगी के हृदय में पवित्रता, उत्साह और प्रसन्नता के भाव उत्पन्न करते हैं। जिससे उनका रक्त के विषैले कीटाणु नष्ट होने लगते हैं और निर्बल अङ्ग फिर से जागृत होकर अपनी क्रियायें करने में समर्थ हो जाते हैं।

पुरुषो ! पुरषार्थ करो !

(ले०-श्री योगीराज श्रीउमेशचन्द्रजी, बम्बई ४)

उद्योगिनं पुरुषसिंह मुपैति लक्ष्मीः।
दैवेन देयमिति का पुरुषा वदन्ति॥
दैवं निहत्य कुरु पौरुष मात्म शक्त्या।
यत्ने कृते यदि न सिद्धयति कोऽत्रदोषः॥

जगत् में अनेक स्त्री पुरुष पुरुषार्थ को प्रधान स्थान देते हैं और बहुत से स्त्री, पुरुष ऐसे हैं, जो दैव गति (प्रारब्ध) को प्रधान पद देते हैं। अब यह शंका उपस्थित होती है कि प्रथम प्रारब्ध को मानना चाहिये, अथवा पुरुषार्थ (कर्म) को ? विचार करने पर पता लगता है कि प्रथम पुरुषार्थ, पश्चात् प्रारब्ध मानना ठीक है। भूत काल में किये हुये कर्म का फल ही प्रारब्ध है। आधुनिक काल के अनेक स्त्री, पुरुषों के ऊपर दृष्टिपात करने पर पता लगता है कि पुरुषार्थहीन बनकर प्रारब्ध के ऊपर भार रक्खे हुए वे जीवन निर्वाह कर रहे हैं।

श्रुति माता क्या कहती है—"मनुष्य सौ वर्ष तक कर्म करके जीने की इच्छा करे।" मुख्य दो हैं,ार का कर्म है। एक सकाम और दूसरा निष्काम, सकाम कर्म का फल से स्वर्ग सुख है और निष्काम कर्म का फल आत्म ज्ञान प्राप्त होता है। सकाम कर्म में भी दो प्रकार है। काम्य और निषिद्ध। निषिद्ध कर्म अत्यन्त निन्दनीय हैं। चोरी परायी स्त्री से कुकर्म की इच्छा, मदिरा पान, चाट, बीड़ी तम्बाकू; गांजा, भाँग, अफीम सेवन आदि अत्यन्त निन्दनीय तथा शरीर एवं मन को दुःख देने वाले कर्मों को निषिद्ध कर्म कहा जाता है। पुत्रेषणा, वित्तेषणा और कीर्ति वृद्धि करने के लिये जो कर्म करते हैं, उसे काम्य कर्म कहते हैं। निषिद्ध कर्म वालों से काम्य कर्म करने वाले अच्छे हैं। काम्य कर्म करने वालों से निष्काम कर्म करने वाले अच्छे है। नैमित्तिक कर्म करना गृहस्थाश्रमियों का धर्म है। उद्योग करते रहने से शरीर निरोग और मन पवित्र रहता है। वह उद्योग निन्दनीय नहीं होना चाहिये।

कर्म निरतको कष्ट साध्य कार्य भी सुगम हो जाता है। शास्त्र की आज्ञा से पढ़िये :—

वीरः सुधीः सुविद्याश्च पुरुषः पुरुषार्थं वान्।
तदन्ये पुरुषाकारः पशवः पुच्छ वर्जितः॥

अर्थात्—विद्या (लौकिक और पारलौकिक) बुद्धिवान्, वीर (व्यवहारिक और परमार्थक कार्य करने के लिये स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर से निरोगी, बलवान्) और सदा उत्तम प्रकार के पुरुषार्थ में संलग्न रहने वाला ही "पुरुष" इस नाम से शोभायमान हो सक्ता है और जो चिन्ताग्रस्त, आलस्यवान, भीरू, काम, क्रोध, लोभ, मोह,असंतोष आदि दुर्गुणों से भरे हुये हैं, उनके शरीर का आकार केवल मनुष्य सरीखा है, किन्तु वह पूंछ रहित पशु समान है।

मनुष्य व्यर्थ विलाप करता है कि "मैं दुःखी हूँ" 'मैं शक्तिहीन हूं,' 'मैं परवश हूँ' यह सर्व विलाप अज्ञान दशा का चिह्न है। श्रेष्ठ मनुष्य जन्म धारण करके भी ऐसा निरर्थक विलाप करना महान् लज्जा की बात है। मनुष्य चाहे सो प्राप्त कर सकता है। परमात्मा ने माता के उदर से बाहर निकलने के समय में ही उसे स्वतन्त्र होने के लिये एकादश इन्द्रियाँ दी हैं। इन साधनोंका उपयोग मनुष्य आहार, निन्द्रा, भय और मैथुन के लिये करके दुख भोगता है। फिर कहता है कि 'मैं दीन हीन हूँ।'

हृदयस्थ भगवान का सहारा लेकर जो मनुष्य योग्य पुरुषार्थ करे, तो स्थूल सम्पत्ति को भोक्ता ही नहीं, किन्तु चौरासी के चक्र से परे हो सकता है। अर्थात् स्वयं सच्चिदानन्द स्वरूप हो सकता है। मानव जन्म सार्थक करने के लिये प्रारब्ध के ऊपर आधार नहीं रखना चाहिये। पुरुषार्थ—अर्थात् निष्काम कर्म, योगाभ्यास, भगवान का ध्यान, सत्शास्त्र का पठन, सत्संग और स्वधर्म के अनुसार उद्योग, धन्धा अथवा अन्य कोई व्यवहार।

शिखा के लाभ

(ले० श्री रामस्वरूप 'अमर' साहित्य रत्न, तालबेहट)

(२)

पिछले अङ्क में बतलाया गया है कि देहरूपी मन्दिर की ध्वजा शिखा है । क्योंकि बिना ध्वजा झन्डा ' के यह नहीं जाना जा सकता है कि यह केस समुदाय का व्यक्ति या कौनसी संस्था है? भारत की प्रधान संस्था कांग्रेस का शिखा (चिह्न) तिरङ्गा झण्डा है, जिसके लिये महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल' नेहरू जैसे व्यक्तियों ने अपने प्राणों का मोह त्याग दिया है। अभी हाल ही में एक पत्र में यह देखा है कि पोलेण्ड देश की एक देश भक्त रमणी ने और एक बालक ने अपने देश के झण्डे को न झुकानेके अपराध में जर्मन सैनिकों के मार्मिक आघातों को सहन करते हुये संसार से कूँच तो कर दिया, किन्तु अपनी ध्वजा का अपमान अपने जीते जी न होने दिया । वाह री ! वीरात्माओ ! यदि तुम्हारे जैसा ज्ञान इस अभागी आर्य जाति को हो जाय, तो उन्नति होने में कोई सन्देह न रहे। क्योंकि 'धर्मो रक्षति रक्षितः' यह नियम अटल है। आपने धर्म के वास्ते यदि कुछ त्याग दिखाये हों, तो धर्म आपकी रक्षा करे । आज हम देखते हैं, ब्रिटिश और जर्मन जैसे शक्तिशाली राज्यों के महायुद्ध में हजारों सैनिक अपनी जान दे रहे हैं । यह क्यों ? उन्हें न तो अपने साथ धन न, जन, न वैभव से कुछ मोह नहीं । केवल वे चाहते हैं, तो अपने झण्डे की शान। जहाँ एक किसी भी शक्तिशाली राज्य का झण्डा दूसरे राज्य पर चढ़ गया, फिर लड़ाई बन्द । वही सैनिक, वही सब बातें मौजूदा होंगी, मगर एक झण्डे के न रहने से शक्ति का द्वार, अपने आप बन्द हो जायगा। यही बात तो हमारी इस ध्वजा (शिखा) पर लागू होती है। जब इस आर्य भूमि में शिखा, सूत्र, मूंछ का ख्याल था, तब किसी की दम न थी कि अत्याचार कर ले। यदि करता भी था, तो हम लोगों में शिखा के द्वारा वह तेज आया करता था कि एक एक सोलह वर्षीय बालके अभिमन्यु भी अपार कौरव (दुष्ट) दल को कुछ न गिनता था। आज हमने अपने आर्यत्व के निशान शिखा को 'पाश्चात्य प्रणाली की बू में रङ्ग कर तिलांजलि दे दी है । तभी तो शक्ति का नाम नहीं रहा। भूषण कवि ने यदि शिवा जी की विजय के लिये उनकी शिखा और मूंछों को महत्व देते हुये उनका उत्साह न बढ़ाया होता, तो उन्हें इतना साहस भी शायद न बढ़ता ? पुरातन ऋषि महर्षियों की ओर ध्यान दीजिये। किसी ने जटाओं से राक्षसी पैदा करदी, तो किसी ने अपने दिव्य जटापाशों में सर्प और इन्द्र को मोहन मन्त्र द्वारा बाँध लिया।

महारानी द्रौपदी के केश (शिखा) तेरह वर्ष तक वैसी ही छिन्न भिन्नावस्था में रहे किन्तु उन्होंने उनका परिष्कार न किया। यदि वे परिष्कार कर लेतीं तो सम्भव था कि भीम जैसे वीर को वीर-शक्ति का जोश भी इतना न बढ़ता। आप में से कितनों ही ने यह देखा और सुना भी होगा कि जब कभी किसी औरत या मर्द को कोई भूत या पिशाच सताता है तो प्रायः तद्विषयक जानकार यही सलाह देते हैं कि—चोटी काट लो। चोटी काटने पर पिशाच भी प्रायः भाग जाता है। कई खाकी सम्प्रदाय के साधुओं में जब किसी बनावटी साधु या ढोंगी सन्तों से वाद विवाद होकर झगड़ा हो जाता है, तो प्रायः उनका सब से भारी अपमान उनके बालों के काटने में ही समझा जाता है। भस्मासुर को भस्म करने में विष्णु भगवान् को सच्चा साथ किसने दिया था ? इन्हीं सुषमा पूरित केश पाशों ने, इसी तेज जननी शिखा ने। न उस भस्मासुर का हाथ उस शिखा पर जाता, न भस्म होता। वहाँ मामला यह हुआ कि कुछ तो वरदत्त वलय की गर्मी का तेज और कुछ उसकी दूषित मनोमालिन्यता का विषैला तेज, यह दोनों संघर्ष को प्राप्त कर गये। दो चीजों के संघर्ष में तीसरी का विनाश निश्चित ही

है—जैसे प्रस्तर लोहे की लड़ाई में रुई का नाश।

ब्राह्म तेज क्यों विलीन है ? शिखा के धर्म को न समझने से। एक कवि ने ठीक ही तो कहा है कि—

हरि ने शिर पर क्यों दिये, इतने भारी बाल।
रक्षा करने तेज की, आयु, बुद्धि, तन पाल ॥१॥
रुद्र तेज या शक्ति को, ठहरत चुटिया मांहि।
याते शिखा जु राखिये, और हेतु कछु नाहिं ॥२॥

इससे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि शिखा में तेज का स्थान सम्यक् रीति से निहित है। देखिये—

चिद्रूपिणि ! महामाये ! दिव्य तेज समन्विते।
तिष्ट देवि ! शिखा-बन्धे, तेजोवृद्धि कुरुष्व मे ॥

अर्थ—हे चैतन्य रूपिणी ! दिव्य तेज वाली (आवागमन कारिणी) देवी ! शिखा-बन्धन में स्थित रहो और मेरे तेज की वृद्धि करो। निराकरण तेज की गति पैरों से शिर तक होती है।

सोलह संस्कारों में "मुण्डन" संस्कार भी शामिल है—उस मुण्डन संस्कार का रहस्य मेरी समझ में तो यही हो सकता है कि माता के उदर में रहने से जीव को प्राक्तन-कर्मों का ख्याल आता रहा, उसे उसने अपने कर्म का भोग समझ छुटकारा पाना, अभीष्ट समझा। जब उस दुःख सागर से उसका बहिरागमन हुआ, मस्तिष्क में सांसारिक वायु मण्डल ने प्रवेश किया, तथापि उसे उस मुंडन संस्कार के पूर्व तक अपने पुरातन कर्मों का ध्यान रहा। वासना निर्मूल हो नहीं सकती, अतः हमारे पूर्वजों ने सोचा—इसके रोम में (बालों म) जो पूर्व वासनायें समाविष्ट हैं, उनका अस्तित्व इसे न ज्ञात रहे, अतः मुंडन संस्कार कराने की प्रथा चालू की। जब तक बच्चे का मुंडन संस्कार नहीं हुआ था, तब तक तो वह अपने कर्तव्य यानी प्रारब्ध और ध्येय को कुछ न कुछ रूप में समझता रहा और उसी पूर्व जन्म कृत-कर्मों का याद में उसे अपने मा, बाप, बन्धु और परिवार की प्रेमग्रन्थि नहीं लग पाई। हालांकि उसे खिलाने पालने का भार मां बाप पर ही था। मगर वह बिलकुल निश्चिन्त था। कभी अपने कर्मों पर रोता, तो कभी हंसता रहा। जब मुंडन संस्कार हुआ, या यों कहिये कि प्राक्तन कर्मों का शिरोहस्थ तेज समाप्त हुआ और नया केशारोहण कार्य प्रारम्भ हुआ, तो उसके मस्तिष्क में, मन में यही अधिक तेज मोहमयी शक्ति समाविष्ट हुई। मा बाप का ख्याल हुआ। प्राक्तन ज्ञान भूला और करणीय कार्यों का मोह पल्ले में पड़ गया। किन्तु बार बार मुंडन कराने से वह पूर्व संचित अनुभूतियों को बिलकुल ही न भूल जाय, इसलिये आचार्यों ने कम से कम थोड़े से बाल तो अवश्य ही शिखा स्थान पर रखे जाने का आदेश किया है।

विपत्ति के समय धैर्य धारण करना, उसके निवारण का आधा उपाय कर लेने के बराबर है।

* *

घृणा करना असुरों का काम है, क्षमा मनुष्यता का लक्षण है और प्रेम देवताओं का स्वभाव है।

* * *

पानी से शरीर, धर्म से आत्मा, ज्ञान से बुद्धि और सत्य से मन पवित्र होता है।

* * *

पानी की बूँद गरम लोहे पर पड़कर नष्ट हो जाती है, वही बूँद कमल के पत्र पर मोती की तरह चमकती है और स्वाँति के संयोग से सीप में प्रवेश करके सच्चा मोती बन जाती है। यह सब संगति का ही गुण है।

* * *

जिसमें सद्गुण है,वही बुद्धिमान है, वही सज्जन है। जो सज्जन है, वही सदा सुखी है।

* * *

जो मनुष्य सद्ग्रन्थों से प्रेम करता है उसे अभिन्न मित्रों, हितकारी उपदेशकों और विनोदी साथियों की कमी नहीं रहती।

* * *

सानपर शैतानकी छाया

(लेखक—सी० ई० एम० जोड)

प्रत्येक युग में मानव-प्राणी ने नाश और शंसता में सुख का अनुभव किया है। विश्वमंच (मानव प्राणी के प्रादुर्भावके पहिले भी पशु जगत उसी तरह का व्यवहार पाया जाता था, जैसा ाज पाया जाता है। मत्स्य न्याय का बोल बाला ।—बड़े पशु छोटों को ग्रास बनाते थे। एक देहधारी सरे पर प्रहार करता था। पशु विज्ञान से परिचय खने वाले महानुभाव जानते हैं, कि बर्र जैसी एक कार की मक्खियाँ भी होती हैं, जो अपने अण्डों ो कुछ कीड़ों की पीठ पर छोड़ जाती हैं, जिससे ीड़े मरते तो नहीं हैं, लेकिन उनकी गति विधि को ाकवा सा मार जाता है। इन कीड़ों की गरमी से ानके अण्डों में जीव पड़ जाता है और बाहर होते ो इन मक्खियों के बच्चे अपने चारों ओर जो कुछ ाते हैं, उसको खाने लगते हैं। सब से पहले इनका ोजन बनता है, वह कीड़ा ही जिसकी पीठ पर ान्म लिया और दुनिया की हवा में पहली सांस ली।

प्रकृति में दुःख जनक बातें देखने में आती हैं। और दुःख बुरी बात है। इसलिए यह नहीं कहा जा नकता कि बुराई केवल मानव प्राणी के पाप का ही ारिणाम है। जब मैं किशोर अवस्था और पूर्ण वय ाप्त करने के बीच में था तब सोशलिज्म की बड़ी ाूम थी, उसी का चारों ओर शोर था। सोशलिज्म े मैंने यह सीखा था कि मानव दुर्गति का कारण उसके जीवन की बुरी अवस्था है। "गरीबी संसार में सब से बड़ा पाप है" अपनी असाधारण वक्तृता शक्ति और अद्वितीय प्रतिभा से जार्ज बरनार्ड शा यही घोषणा कर रहे थे। हाँ, गरीबी सब से बड़ा पाप है, क्योंकि यही तो अन्य सब पापों को जनती है।

श्री० बरनार्ड शा इस नतीजे पर पहुँचे हैं, कि प्रत्येक मानव प्राणी का यह धर्म है कि उसके पास पैसा हो। पैसा पास होना बुद्धिमानी और पुण्य का लक्षण है।

इससे क्या सीख मिलती है हमको? यही कि पाप को जननी दोष पूर्ण सामाजिक अवस्थायें हैं। अब आप चाहें तो पार्लिमेंट में एक कानून पास करा कर बुरी सामाजिक अवस्थाओं को सुधार सकते हैं, दुःख की जगह सुख, गन्दगी की जगह सफाई रोग की जगह स्वास्थ्य की स्थापना कर सकते हैं। इसलिये प्रगटतः आप चाहें तो जनता को पुण्यवान, और धर्मनिष्ठायुक्त बना सकते हैं! किन्तु विचारना चाहिए कि यह बात कह तक ठीक है? क्या मनुष्य पैसे के अभाव में ही पाप करता है?

कुछ दिन पहले की बात है, कि मुझे वियन्ना के एक ऐसे व्यक्ति से मिलने का अवसर मिला जो हिटलर के डर से वहाँ से भाग आया था और भूतों जैसी सूरत लिये आज लन्दन के रेस्टोराओं और बैठकों में मारा मारा फिरता है। वह नाजियों के आस्ट्रिया में पाँव रखने के पहले एक प्रसिद्ध डाक्टर था। उसने मुझको दो घटनायें बताईं, जिनको मैं यहाँ दे रहा हूं। उनको सुन कर एक बार फिर मेरे हृदय में यह भाव जगा कि धर्म गुरुओं की क्या यह बात सच ही थी कि इंसान पर शैतान की छाया है!

(१) वियन्ना में रिगस्ट्रा से के बराबर एक बूढ़ा यहूदी दौड़ा जा रहा था, चार युवा नाजी उसका पीछा कर रहे थे।

यहूदी सज्जन के लम्बी दाढ़ी थी, जो दो हिस्सों में बीच की एक पट्टी द्वारा बटी हुई थी। उसकी दाढ़ी के दोनों हिस्सों में रस्सियाँ बँधी हुई थीं, और उन रस्सियों को कन्धे के ऊपर से उक्त युवा नाजी पकड़े हुये थे। जैसे ही बूढ़ा यहूदी अपनी गति को धीमी कर देता था तैसे हा अपने "घोड़े" की रफ्तार तेज करने के लिये पीछे से नाजी उस पर हंटर या लात से चोट लगा देते थे।

(२) वियन्ना के " प्रेटर " में युवा स्त्रियाँ टहलने निकला करती हैं, अपने अपने बच्चों को अपनी पिरंम्बुलेटर गाड़ियों में लिटाये हुये। एक दिन की बात है दो नाज़ी युवक हाथ में भीगे हुऐ तौलिये किये हुये जिनको ऐंठ कर रस्सी की तरह बना लिया गया था, उन स्त्रियों की तलाश में घूम रहे थे जो यहूदी थीं। जैसे ही कोई यहूदी स्त्री मिलती ये इन कोड़ों स उसको पीटने लगते। ये स्त्रियाँ जान बचाने को भागतीं, पीछे से कोड़ों की बौछार पड़ती जाती, वे और तेज भागतीं और, और भी अधिक कौड़ों की बौछार उन पर होती, यहाँ तक कि उनके बच्चों की गाड़ियाँ उलट जातीं, उनके बच्चे सड़क पर लुड़कते हुए इधर उधर ऊपर जा पड़ते !

ये दो घटनायें आपने पढ़ीं। मैं तो एक क्षण भर के लिए भी यह मानने को तैयार नहीं हूं कि आर्थिक संकट के कारण ही कोई ऐसा कर सकता है।

मानव जाति का इतिहास संकटपूर्ण रहा है। अपने जीवन में मानव प्राणी को अकाल, बाढ़, महामारी और भूकम्प आदि ऐसी शक्तियों का सामना करना पड़ा है, जो उसके बस से बाहर थीं। इन संकटों में उसके परिवार उसकी जाति नष्ट हो गई है। खून पसीना एक करके, उसने पेट भरने को अन्न, और तन ढकने को कपड़ा पाया है। भेड़ियों, बाघों और साँपों से उसको लड़ाई लड़नी पड़ी है, कभी वह खुद मारा गया है, और अक्सर उसने उनको मारा है, इतना प्रयत्न करने पर भी अनेक बार उसको रोटी नहीं मिली, कपड़ा नहीं मिला।

अधिकाँश मानव प्राणी यह नहीं जानते कि कब और कहाँ से उनको रोटी मिल सकती है, और जब कभी उनको रोटी मिलती है तो इतनी नहीं कि उनकी क्षुधा सन्तुष्ट हो जाय ! अधिकाँश मानव प्राणी अन्य मानव प्राणियों की दासता के जाल में जकड़े हुए हैं। अधिकाँश मानव प्राणी कभी दास रहे हैं, तो कभी मालिक के खेत पर काम करने वाले, अधिकार विहीन कुली, कभी नौकर रहे हैं तो कभी भूख की माँग पूरी करने के लिये अपनी मजदूरी बेचने वाले, मजूर ! अतृप्त भूख और भूख के बीच उन्होंने कलामुंडियाँ खाईं हैं, अभाव और अपमान के गर्त किनारे पर पड़े रह कर दिन बिताये हैं-हमेशा किसी दूसरे के इशारे पर वह नाचे हैं, कभी वे अपने स्वयं स्वामी नहीं बन सके।

खयाल कीजिये उन मानव कहे जाने वाले प्राणियों का, जिन्होंने गगनचुम्बी पिरामिड खड़े किये। खयाल कीजिये उन हतभाग्य प्रभु संतानों का, जिन्होंने किसी राजा या रानी की इच्छा पूरी करने के लिये कंधे पर ढो ढो कर ऊंची पहाड़ियों की चोटियों पर शिलायें पहुँचाईं और गढ़ और गढ़ियां तैयार कीं। खयाल कीजिये उन देहधारियों का, जो किसी एक मध्य युगी डकैत के लिये जहाजों की पतवार खेंचते रहे, और इसी प्रयत्न में कुत्तों की तरह मर गये...आप कल्पना नहीं कर सकते, आप सिहर उठेंगे।

मानव इतिहास के पन्ने बदलते चलिये आपको अनिवार्यतः इस परिणाम पर पहुंचना होगा, कि अतीत में मानव जीवन की विशेषता ही, भय, इंद्रिय लोलुपता, नृशंसता, और पीड़ा रही है और यदि मानव जाति उसी रास्ते पर चली, जिस पर उसको इस समय ले जाया जा रहा है, तो भविष्य में भी उसके भाग्य में यही बदा है। क्योंकि वही पुराना पाप आज भी अनियंत्रित रूप से क्रीड़ा कर रहा है—युद्ध का तो कहना ही क्या, शान्ति के समय में भी। सन् १९२८-३० में उत्तरी चीन में लगभग ६० लाख व्यक्ति भूख के कारण इहलोक की लीला समाप्त करके प्रभु के दरबार में चले गये। जिन नगरों और गाँवों में हमारे ये लाखों बन्धु मर रहे थे, वे व्यापारी भी थे, जिनके कोठों में गेहूं और चावल भरा था और जिनकी रक्षा के लिये सरकार की तरफ से पुलिस पहरा देती थी। किनकी रक्षा के लिये ? उनकी रक्षा के लिये जो भूखे मरने वाले प्राणियों में से, उनको जो अपने आपको या अपनी

बेटियों को या बहुओं को बेच कर पैसा दे सकते थे, गेहूँ, चावल बेच कर पैसा कमा रहे थे। टीनसिन आदि स्थानों में चंदा करके उन अभागे प्राणियों के लिए अनाज आदि इकट्ठा किया गया था। वह उन तक इसलिये न पहुँच सका था कि सैनिक अधिकारी एक भी रेल गाड़ी इस काम के लिये देने को तैयार न थे, क्योंकि रेलवे गाड़ियाँ उनको अपने लिये चाहिए थीं।

क्या बीसवीं सदी में भी ऐसी बातें हो सकती हैं? यह प्रश्न किया जा सकता है। लेकिन प्रश्न व्यर्थ है, क्योंकि ये होती हैं।....पर क्या मानव प्राणी सदा अपने सहयोगियों के प्रति पशु जैसा ही व्यवहार करता रहा है? यह कहना, अधूरी बात है। वह साहित्य रचता है, संगीत का निर्माण करता है, दर्शन की रचना करता है और सभ्यता का सृजन भी करता है।

——

प्रसन्न रहने के उपाय

जीवन को सर्वतो मुखी सफलताओं के लिए चित्त को प्रसन्न रखना बहुत ही जरूरी है। चाहे कोई आदमी कितना ही धनी, गुणी, विद्वान या सुन्दर क्यों न हो, दुनियां उससे मिलकर तब तक हार्दिक प्रसन्नता प्रकट नहीं करती, तब तक कि उसका स्वभाव प्रसन्नतामय न हो। दुनियां के पास अपने ही कष्ट बहुत हैं, वह तुम्हारा रोना सुनने के लिये तैयार नहीं है। हां, वह तुम्हारी प्रसन्नता का आनन्द लूटने में सम्मिलित हो सकती है। प्रसन्न मनुष्य को सुगंधित पुष्पों की तरह दुनियां ढूँढ़ निकालती है और उसका समुचित आदर करती है। डाक्टर शेल्डन लेविट लिखते हैं—व्यापार के लिये, बाह्य प्रभाव के लिए अथवा आरोग्य प्राप्ति के लिए हंस मुख रहना बहुत आवश्यक है।

खिन्नता और उदासी का कारण अपनी नासमझी है, हम रोज रोज नई जरूरत पैदा करते जाते हैं और जब वे पूर्ण नहीं होतीं, तो दुख मानते हैं, एवं अप्रसन्न रहने लगते हैं। अपनी कमजोरियों पर ध्यान न देकर असफलता का दूसरों पर दोषारोपण करते हैं। वास्तव में समस्त इच्छाओं की पूर्ति होना बहुत ही कठिन है। क्योंकि यदि एक ही वस्तु चरम-लक्ष हो और उसके लिए अनवरत तपस्या की जाय, तो वह समयानुसार मिल सकती है, किन्तु हमारी हर एक छोटी बड़ी मनचाही इच्छाएँ सदा पूरी होती रहें, ऐसा कोई विधान नहीं है। इसलिये अपनी आवश्यकता को घटाना चाहिए। उन्नति की ओर से मुँह फेर कर एवं आलसियों की तरह निराश बैठ जाना बुरा है, परन्तु आवश्यकताओं की तृष्णा को बढ़ाते ही जाना, यह उससे भी बुरा है। यदि मनुष्य अपना एक लक्ष स्थिर करले, तो शेष व्यर्थ की बातों पर मन का ललचाना अपने आप रुक जायगा।

अपने से अधिक सुखी मनुष्यों को देख कर मन में ईर्षा उत्पन्न मत करो, वरन् अपने से गिरी हुई दशा के कुछ उदाहरणों को सामने रख कर उनकी और अपनी दशा का मुकाबिला करो। तब तुम्हें प्रसन्नता होगी कि ईश्वर ने तुम्हें उनकी अपेक्षा कितनी सुविधाऐं दे रखी हैं। एक बार महात्मा शेखसादी से पास जूते न थे। वे सर्दी गर्मी और कुश कंटकों से बड़ा कष्ट पाते और जूते के अभाव में दुखी हो रहे थे। एक दिन वे घूमते-घूमते कोफा की मसजिद में पहुँचे और देखा कि एक व्यक्ति वहाँ ऐसा पड़ा हुआ था, जिसके हाथ पैर किसी प्रकार कट गये थे और वह चूतड़ों के बल घसिट-घसिट कर चलता था। उसे देख कर शेखसादी ने परमात्मा को धन्यवाद दिया कि मेरे पास जूता नहीं है, न सही, हाथ पैरों से आरोग्य तो हूँ। संसार में असंख्य मनुष्य तुम से नीची दशा में पड़े हुए हैं, उन्हें देख कर संतोष करो और अपने को दुखी मत होने दो।

दूसरों को दुख न दोगे, तो तुम भी दुखी न

रहोगे, यह प्रकृति का अकाट्य नियम है। किसी का दिल मत दुखाओ और न किसी के साथ अन्याय करो। यदि किसी से तुम्हारी लड़ाई हो जाय और वह तुम से बोलना छोड़ दे, तो भी तुम उसकी ओर से मूँह न फेरो। जब कभी वह फिर से रास्ता चलते मिल जाय, तो एक बार हँस पड़ो और उसे गले लगालो या माफी माँग लो। यह न समझना चाहिए कि ऐसा करने से तुम्हें कायर समझा जायगा। उदारता कायरों से नहीं हो सकती, यह तो बलवान का लक्षण है। प्रेम मय व्यवहार को कोई सच्चा मनुष्य चाहे वह कितना ही विरोधी हो, कमजोरी नहीं समझ सकता। तुम्हारे प्रेममय व्यवहार से उसका हृदय उमड़ पड़ेगा और सारे बैर भाव को भुला कर सच्चा मित्र बन जायगा।

जब दुखदायी परिस्थितियाँ सामने आ खड़ी होती हैं, तो मनुष्य को विशेष रूप से चिन्ता सताने लगती है। व्यापार में घाटा है, मित्रों ने धोखा दिया है, धन का अभाव है, कोई आकस्मिक विपत्ति आगई है, कुटुम्बी जन कहना नहीं मानते, रोगों ने आ घेरा है, ऐसी स्थितियों में साधारण पुरुषों को बड़ा क्लेश होता है, किन्तु जिनका ईश्वर पर भरोसा है वे इन परिस्थितियों में भी न तो घबराते हैं और न दुखी होते हैं। वे परमात्मा पर भरोसा रखने का कारण समझते हैं कि यह विपत्ति भी शीघ्र टल जायगी और एक कर्तव्यपरायण वीर पुरुष की भाँति उनके निवारण का साहस पूर्वक उपाय करते हैं। विपत्तियों को परीक्षा समझ कर उस पर अपने को प्रसन्नता पूर्वक कसने देते हैं, ताकि उनका भविष्य बहुत ही उज्ज्वल और आनंदमय बन जावे। दुख सुख रोज आने वाली घटनाएं हैं फिर क्यों उनके कारण अपने का दुखी बनाया जाय?

भलाई और उपकार के विचार एवं कार्य दुख में भी सुख उत्पन्न करते हैं। कोई व्यक्ति तुम्हारे साथ बुराई कर रहा हो तो तुम सच्चे हृदय से उसकी भलाई चाहो। जिस समय दुख का वातावरण पैदा हो रहा है उस समय किसी दुखी व्यक्ति की सेवा सहायता करने लगो या उपकार की महत्ता पर मन ही मन विचार करना आरंभ कर दो। भलाई के विचारों में एक ऐसी शक्ति है कि मन चाहे कितना ही भारी क्यों न होरहा हो उसमें तुरन्त ही हलकापन आता है और शान्ति उपलब्ध होती है। पूजा पाठ, दान धर्म, उपदेश सेवा यह सब भलाई की श्रेणी ही में गिने जाते हैं:

अपने आप को चिन्ता में से उबारने की शिक्षा दो। भुला देने का अभ्यास कर लेना बहुत बढ़िया उपाय है। क्रोध या चिन्ता के विचारों पर जितना ही अधिक ध्यान दिया जाता है, वे उतने ही अधिक भड़कते हैं और दुख को अधिकाधिक बढ़ाते जाते हैं इसलिये जब कोई आवेश आरहा हो या दिल टूट रहा हो तो उसे भुलाने का प्रयत्न करो। उन विचारों या कामों पर से अपने शरीर और चित्त को दूसरे किसी प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले काम पर लगादो और उस दुखद प्रसंग को बिलकुल भुलादेने का प्रयत्न करो मानो उस प्रकार की कोई बात हुई ही न थी। हंसी न आती हो तो भी हंसो, बनावटी हंसी हंसो। दर्पण में अपना हंसता हुआ चहरा बार बार देखो और मन ही मन प्रसन्नता प्राप्त करो।

निम्न मंत्रों को वारवार दुहराते रहने पर भी अप्रसन्नता की आदत छूट जाती है और प्रसन्न रहने का स्वभाव बन जाता है। मन्त्र—

(१) मैंने सदा प्रसन्न चित्त रहने की प्रतिज्ञा करली है।

(२) मैं ईश्वर की दयालुता पर पूर्ण विश्वास करता हूं।

(३) मेरी आत्मा आनन्द, आरोग्य और ऐश्वर्य स्वरूप हैं।

(४) मेरे मन में चिन्ता, दुख, शोक आदि शत्रुओं के लिए तनिक भी स्थान नहीं है।

(५) मैं आनन्दमय हूं और हर स्थिति में आनन्द प्राप्त करता हूं।

दुःखों का बाप-ममत्व

(ले० श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर)

विश्व में जितने भी प्राणी हैं, सभी सुख की आकांक्षा रखते हैं और उसकी प्राप्ति के लिये निरंतर प्रयत्नशील हैं। पर हजारों प्रयत्न करने पर भी वे सदा दुःख की ही विषम ज्वाला से संतप्त नजर आते हैं, उनकी अशांति घटने के बदले बढ़ती ही जा रही है, इसका कारण क्या है? यही आश्चर्य एवं अन्वेषण का विषय है। गंभीर विचार करने पर सहसा दो प्रश्न हमारे सामने आते हैं, प्रथम—क्या सुख कोई वास्तविक सत्य न होकर कल्पनामात्र है? या सुख के वास्तविक स्वरूप एवं मार्ग से हम सर्वथा अपरिचित हैं अर्थात् सुख की जो कल्पना हमने कर रखी है,वह भ्रान्तिपूर्वक है? अन्यथा ऐसा अन्य कारण और हो ही क्या सकता है कि जिसके फल स्वरूप अपनी बुद्धि एवं शक्ति के अनुसार पूर्ण प्रयत्न करते रहने पर भी हमें इच्छित फल-सुख प्राप्त नहीं होता।

प्रथम प्रश्न पर जरा और गंभीरता से विचार करने पर पता चलता है कि वह प्रश्न समीचीन नहीं है। क्योंकि हमारे पूर्ववर्ती ऋषि मुनियों ने उस आनन्द का अनुभव किया है, एवं अब भी कई आत्माऐं ऐसी नजर आती हैं कि उनके दर्शन, वचन श्रवण एवं सत्संग से परम शान्ति का अनुभव होता है, अतएव यही विश्वास होता है कि सुख एक वास्तविक सत्य है, हाँ हमारी मान्यता एवं मार्ग में भ्रान्ति हो सकती है, जिस प्रकार तेली का बैल आँखों पर पट्टी बंधे रहने के कारण घाणी के चारों ओर घूमता हुआ जब थक जाता है, तो मन ही मन सोचता है कि मैंने बहुत लम्बी सफर करली, पर आँख खुलने पर उसी घाणी को पास पाकर उसको अपनी मान्यता भ्रान्ति मूल नजर आती है, वही दशा हमारी है।

हमारी सुख की कल्पना भ्रान्तिमूलक है, इसका विश्वास हमें दो समस्याओं पर विचार करने से स्वतः हो जाता है, क्योंकि हमारी कल्पना में संग्रह एवं भोग ही सुख के साधन हैं, तब निरंतर आत्म चिंता करने वाले योगी जन कहते हैं कि सुख भोगमें नहीं त्याग में है, इससे सुख के सम्बन्ध में एक नई दिशा मिलती है। तथा एक प्राणी जिसे सुख का साधन मानता है, वही अन्य प्राणी के लिये दुखप्रद सिद्ध होता है। केवल यही नहीं, भिन्न-भिन्न प्राणियों की बात को छोड़ भी दें, तो भी एक ही व्यक्ति को अपने जीवन में ऐसे अनेक अनुभव मिलते हैं कि एक ही बात एक बार उसे आनन्दप्रद होती है, वही अन्य समय में उसे दुखदायक हो जाती है। यथाः—एक खाद्य वस्तु निरोग स्वस्थ अवस्था में रुचिकर होती है, वही रोगी अवस्था में अप्रिय हो जाती है। पुत्र प्राप्ति सुख का साधन है, पर जब कोई पुत्र अविनीत हो गया या केवल पुत्र ही पुत्र उत्पन्न हो और द्रव्याभाव हो, तो ऊब कर कह उठता है, अब उत्पन्न न हों, तो अच्छा या कन्या हो जाने से ठीक है। इसी प्रकार अन्य अनेक प्रसंग हैं, इनसे एक सिद्धान्त पाया जाता है कि सुख,दुख वस्तु के संयोग वियोग में नहीं, पर व्यक्ति के विचारों पर निर्भर है।

यही बात अन्य एक उदाहरण द्वारा विशेष स्पष्ट हो जाती है। वह यह है-थोड़े समय पूर्व जेल जाना बड़ा ही निन्दनीय एवं भयप्रद समझा जाता था, पर राष्ट्रीय आन्दोलन ने लोक मानस को बदल डाला, आज कानून भङ्ग कर राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता जेल जाते हैं, तो उनका मान बहुत अधिक बढ़ जाता है, जाते समय पुष्पों की माला पहनाई जाती हैं। जो जेल जाते हैं, वे भी तनिक भय नहीं लाते। जो वस्तु अत्यन्त दुखप्रद थी उसे वे तनिक भी कष्टकर नहीं मानते। "योगीजन भी कष्टों को बड़े आनन्द के साथ भोगते हैं,बाह्य सुखों को वे दुख समझते हैं।"

अब हमें देखना यह है कि सुख कहते किसे हैं? एवं दुःख का मूल कारण क्या है? महापुरुषों ने दुःख का अभाव सुख माना है। अतएव हमें केवल

दुःख के कारण को जान कर उसका अभाव कर देना आवश्यक है। अनुभव एवं आगम ग्रन्थ बतलाते हैं कि दुःख ममत्व भाव के कारण होता है, जहाँ ममत्व भाव नहीं है, वहाँ दुःख की अनुभूति नहीं होती। उदाहरणार्थ—विश्व में प्रति समय अनंत प्राणी उत्पन्न होते हैं, व मरते हैं, पर हमें उससे कोई हर्ष विषाद नहीं होता और जब हमारे या हमारे कुटुम्ब में कोई बालक जन्म लेता है, तो हमारे हृदय में हर्ष होता है और जब कोई आत्मीय मरता है, तो शोक होता है, इसका कारण अति स्पष्ट है कि जिसके प्रति हमने ममत्व किया, कि यह मेरा है, उसके संयोग वियोग से दुःख सुख के भाव उत्पन्न होते हैं, जहाँ हमारी ममत्व बुद्धि नहीं है, उसके संयोग वियोग में हमारी चित्त वृत्ति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। हम हमारे सामने किसी दूसरे व्यक्ति की एक वस्तु को नष्ट होते या करते हुए देखते हैं, पर विचार करते हैं कि अपने को इससे क्या ? और वही वस्तु जब हमारी होती है, तो उसको नष्ट नहीं होने देते। यदि कोई करे, तो उसके प्रति द्वेष उत्पन्न हो जाता है। इन सब बातों से यह सहज जाना जाता है कि दुःख ममत्व भाव में है। अतएव ममत्व भाव को छोड़ कर समत्व धारण करना चाहिये।

ममत्व बुद्धि वस्तु के सत्य स्वरूप के विचार से नष्ट होती है। जिस वस्तु के प्रति हमारा मोह हो, उसके सम्बन्ध एवं परिणाम पर विचार करते हैं, तो उस पर से ममत्व हटने लगता है जैसे किसी सुस्वादु खाद्य पदार्थ में हमारा मोह हो, तो हमें उस खाद्य पदार्थ को खाने के बाद क्या गति होती है ? विष्ठा जिसे देखने को भी जी नहीं चाहता, दुर्गन्ध से जी मचलाने लगता है, उस वस्तु की इस गति पर विचार करें, तो उस पर से रुचि हटने लगेगी। शरीर को हम अपना करके मानते हैं, इसके कारण उसके लिये अनेक पाप कर्म करते हैं, उसकी रक्षा एवं सुन्दरता वृद्धि के लिये अपने बहूमूल्य जीवन का काफी समय लगा देते हैं, पर जब हम उसकी अन्तिम अवस्था भस्मीभूत राख, जरावस्था रुग्ण अवस्था पर विचार करते हैं, तो उस पर जो ममत्व है, वह शिथिल होता चला जायगा। इसी प्रकार कुटुम्ब परिवार के प्रति जो स्वार्थमय सम्बन्ध है, उसके परिणाम पर विचार करें कि हम उनके लिये कहाँ तक दौड़ धूप मचा रहे हैं, अत्याचार से धनोपार्जन करते हैं, पर जब उनकी स्वार्थ पूर्ति में कमी हुई कि वे ही शत्रु सदृश हो जाते हैं, मरने पर कोई साथ नहीं जा सकता, सब धन माल जिसके ममत्व वश लाखों अन्याय मनुष्य करता है, वह सब यहीं पड़ा रहेगा, उसका तनिक भी हिस्सा साथ न जायगा। आत्मा अकेला आया एवं अकेला जायगा। अपने कर्मों का भोग उसे स्वयं भोगना पड़ता है, दुख का शोक का कोई बँटवारा नहीं कर सकता, इन सब परिणामों पर विचार करने से वैराग्य का उद्भव होता है और ममत्व घटता चला जाता है।

वास्तव में आनन्द आत्म ममता में है। हरिण जिस प्रकार अपनी नाभि में कस्तूरी होने पर भी उसकी सुगन्ध से मुग्ध होकर चारों ओर दौड़ता फिरता है, पर उस गन्धका कारण उसकी नाभिस्थित कस्तूरी ही है, इसे नहीं जानता, उसी प्रकार मनुष्य वास्तविक सुख एवं उसके मार्ग को भूल कर आनन्द के लिये प्रति समय इधर उधर दौड़ धूप कर रहा है, पर जब भूल भ्रान्ति का कारण अज्ञान एवं दुःख का कारण ममत्व को छोड़ देंगे, तो भी हमें परमानंद की प्राप्ति होगी।

साहस ऊँचे दर्जे की उदारता है, क्योंकि साहसी पुरुष अपनी बहुमूल्य वस्तुओं को भी मुक्त हस्त से अपने सिद्धान्तों पर निछावर कर सकता है।

* * *

कटीली झाडियों में भी जब पुष्प खिलते हैं, तो वे बड़ी नयनाभिराम बन जाती हैं, तुच्छ और नगण्य मनुष्य में भी जब सद्गुणों का समावेश हो जाताहै, तो वे महान् पुरुषों की समता करने लगते हैं।

* * *

पूरी सांस।

(ले० श्री०नारायणप्रसाद तिवारी 'उज्ज्वल' कन्हीबाड़ा)

हम लोग भोजन के सम्बन्ध में हानि लाभ की कुछ थोड़ी बहुत बाते जानते हैं, परन्तु वायु जो भोजन से भी अधिक आवश्यक है, उसके सम्बन्ध में बहुत ही कम जानते हैं। स्वास्थ्य रक्षा के लिये प्राण वायु (oxygan) जितनी आवश्यक है, उतनी और कोई वस्तु नहीं। हम लोग सड़े गले भोजन को खाना पसन्द नहीं करते, किन्तु सड़ी और गन्दी से उन्हें कुछ भी परहेज नहीं होता। डाकृर रौडस्मंड के मतानुसार प्राण वायु (ओषजन) एक खुराक है, जिसका महत्व खाने पीने की अन्य चीजों की अपेक्षा बहुत अधिक है। वे कहते है कि यह बात असत्य है, कि हृदय के द्वारा रक्त का दौरा होता हैं, वरन् सच बात यह है, कि प्राण वायु रक्त मे मिल कर उसे दौरा करने की शक्ति देता है, मनुष्य के शरीर को अपना काम चलाने के लिये जिस शक्ति की जरूरत होती है, वह कहाँ से आती है, इस विषय पर इस युगके धुरन्धर शरीर शास्त्री श्री बरनर मेकफेडन ने जो अनुसंधान किया है, वह जानने ही योग्य है, वे लिखते हैं-" हम प्रत्येक श्वाँस के साथ जो वायु खींचते हैं, उसके साथ एक विद्युत शक्ति शरीर में जाती है और विद्युत शक्ति अन्य कोई वस्तु नहीं आक्सिजन वायु का ही परिवर्तित रूप है। जब यह वायु रक्त में मिलती है, तो स्नायु मंडल से ग्रहण कर लेता है और स्नायविक केन्द्र में पहुँचा देता है और उसी की शक्ति से शरीर के सारे काम चलते हैं।" भोजन पचाने, बात चीत करने, चलने फिरने आदि के कार्य इसी शक्ति द्वारा पूरे किये जाते हैं। बहुत सेलोग समझते हैं, कि हमें तो दिमागी काम करना पड़ता है। इस लिये दिमागी ताकत बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये। हमें शारीरिक महनत से क्या प्रयोजन? उन्हें याद रखना चाहिये कि मानसिक श्रम में भी स्नायविक शक्ति व्यय होती है। यह शक्ति शारीरिक स्वास्थ्य एवं स्नायु विद्युत से ही आतीहै उस शक्ति का मूलस्रोत ओषजन है, जो वायु में ही प्राप्त होता है।

कितने अज्ञान की बात है, कि लोग इस प्राण शक्ति से डरते हैं, और खुली हवा में रहने की अपेक्षा बन्द मकानों में काम करना पसन्द करते हैं। जाड़े के दिनों में आप किसी मोहल्ले में चले जाइये सारी खिड़कियां बन्द मिलेंगी, लोग अपने कमरे बन्द करके उनके अन्दर मुँह ढक कर सो रहे होंगे। यह प्रथा स्वास्थ्य के लिये बहुत ही हानिकर है। तेज या ठण्डी हवा में निकलने से लोग भयभीत होते हैं और समझते हैं कि इससे जुकाम आदि हो जायगा। यह भ्रम मिथ्या है, तेज, या ठंडी हवा से कोई बीमारी नहीं होती। यदि जुकाम होता भी है, तो वह तुम्हारे लिये अच्छाहै। अगर शरीरमें दोष भरे पड़े हैं, जो जुकाम होकर बलगम द्वारा ही उनका निकल जाना भला है, उन्हें रोक कर या दबाकर रखा जाय तो आगे चल कर वे किसी भयङ्कर बीमारी के रूप में प्रकट हो सकते हैं। बन्द कमरे में बार बार साँस लेने से शरीर का कार्बोनिक ऐसिड गैस नामक विष वायु में मिल जाता हैऔर उसी विषैली वायु को बार बार ग्रहण करने पर वह उत्तरोत्तर और भी अधिक विषैली होती जाती है, बहुत देर तक उस विषैली गैस में रहने से शरीर की बड़ी क्षति होती है। इस बात की परीक्षा आप स्वय कर सकते हैं, बन्द कमरे में मुंह ढक कर सोने पर सुबह उठते हुए शरीर भारी सा मालूम पड़ेगा। तन्द्रा और आलस्य छाये होंगे, खाट पर से उठना अच्छा न लगेगा और दिन भर सुस्ती बनी रहेगी। खुली हवा में सोने पर यह बातें नहीं हो सकतीं। रात भर जिसने आक्सिजन (प्राणप्रद वायु) प्राप्त

की है, वह प्रातःकाल प्रसन्न बदन उठेगा और दिन भर फुर्ती का अनुभव करेगा।

फेडन महोदय कहते हैं कि लोग शुद्ध तरीके से साँस लेना भी नहीं जानते और स्त्रियाँ तो उस विषय में बहुत ही अज्ञ होती हैं। छोटे बालक का पेट उघाड़ कर देखिये वह पेडू तक साँस लेता हुआ मिलेगा। जब वह साँस छोड़ेगा तो उसका पेडू सुकड़ेगा। इससे जाना जाता है कि श्वाँस लेने का प्राकृतिक नियम क्या है। अधिक कपड़ों से लदा रहने, आराम से पड़े रहने, एवं झुक कर बैठने के कारण अधूरी साँस लेने की आदत पड़ जाती है। पूरी साँस लेने पर पेडू फूलता एवं सुकड़ता है जिससे (Diaphragm) नामक पेट का वह अङ्ग जो पेट और आँतों को फेफड़े से अलग करता है, नीचे जाता है और फेफड़ों के निचले भाग का दबाव हलका करके उसमें पूरी हवा भर जाने देता है। इस प्रकार फेफड़ों की पूरी शुद्धि होती रहती है। इसके अतिरिक्त जब Diaphragm नीचे खिसकता है तो, आमाशय, जिगर एवं आतों की क्रिया तेज हो जाती है। क्योंकि उन पर इसका एक हलका धक्का सा लगता है। जो लोग अधूरी सांस लेते हैं, वे पूरी सांस लेकर देखें उनकी पाचन शक्ति पहले की अपेक्षा बहुत तीव्र हो जायगी और फेफड़े मजबूत होने लगेंगे। फेफड़ों की मजबूती पर शारीरिक बल निर्भर है। क्योंकि पूरी सांस लेने से ही अधिक मात्रा में आक्सिजन वायु प्राप्त की जा सकती है। ऋषियों ने प्राणायाम की श्वास प्रश्वास क्रियाओं पर इसीलिये अधिक जोर दिया है, कि इनके द्वारा मनुष्य की स्नायविक शक्ति बढ़े और यह कार्यवाहिनी विद्युत को पर्याप्त मात्रा में प्राप्त करके स्वास्थ्य की उन्नति करता रहे। पर्याप्त मात्रा में ओषजन को शरीर में पहुचाना निरोग रहने का सर्वोत्तम साधन कहा जा सकता है।

खुली हवा में गहरी सांस लेने की आदत डालिये। फेफड़ों में पूरी हवा भरिये, परन्तु याद रखिये पहले पेडू को फुलाना चाहिए। कुछ दिनों के प्रयत्न से यह अभ्यास आदत के रूप में बदल जाता है और तब स्वास्थ्य में आश्चर्यजनक उन्नति हो जाती है। पूरी सांस लेने की आदत डालने के लिये यह आवश्यक है कि अपने मन में यह बात अच्छी तरह जमालो कि गहरी सांस लेना मनोरंजन का एक साधन है। इसे भार रूप में समझोगे और ज्यों त्यों करके कुछ देर बेगार भुगतोगे तो कुछ लाभ न होगा। मन उसी काम में लगता है, जिसे मनोरंजन समझ कर किया जाता है। जब कभी खुली हवा में चलने का अवसर मिले तो खेल की तरह गहरी सांस खींचो और साथ ही गिनते जाओ कि जितने समय में एक सांस ली उतने समय में तुम कितने कदम चल लिए, उतने ही कदम चलने में सांस छोड़ो। फेफड़ों को पूरा भरना और पूरा खाली करना एवं पेडू का उठाना सकोड़ना यह स्वाभाविक श्वाँस क्रिया की कसौटी है। इस सरल प्राणायाम से रक्त की सजीवता बहुत बढ़ जाती है।

संसार में अप्रिय घटनायें होती हैं, तुम विश्व की समस्त घटनाओं को अपने अनुकूल नहीं बना सकते। इससे दुख से छूट कर सुख प्राप्त करने का यह उपाय है कि घटनाओं को ईश्वरकी इच्छा समझ कर शान्त रहो और धर्म समझकर अपने कर्तव्य का पालन करते जाओ।

*   *   *

न तो निन्दा पर विचार करो और न प्रशंसा की चाह करो। दूसरे तुम्हारे लिये क्या कहते हैं, इसके लिये चिंतित होने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। जिस कार्य को तुम्हारी अन्तरात्मा ठीक समझती है, उसी पर सच्चे हृदय से आरूढ़ रहो। विरोधी लोग एक दिन समर्थक बन जायेंगे।

*   *   *

मूर्खों की मित्रता में खतरा है। आरम्भ में वह वह हँसावे तो भी अन्त समय रुलाये बिना न रहेगी।

*   *   *

जप-योग ।

(ले०—पं० भोजराज शुक्ल, ऐत्मादपुर, आगरा)

ईश्वर के नाम का जप करने से उसके दिव्य गुणों का प्रभाव मनुष्य के हृदय पर पड़ता है, अधिक मात्रा में जप करने से वह गुण मनुष्य में भी आने लगते हैं। यदि मनुष्य प्राणायाम के साथ दृढ़ आसन हो कर एकाग्र चित से नित्य प्रति ३ घंटे जप करे, तो उसका चित्त ठहरने लगता है। इसी का स्थूल रूप हरि-कीर्तन है, इससे भी मन एकाग्र हो कर ईश्वर में प्रेम तथा भक्ति उत्पन्न होने लगती है, जप करने के लिये ईश्वर का सर्वोत्तम नाम "ओ३म्" है। यदि अर्थ सहित जप किया जावे, तो विशेष लाभ होता है, जप करने से पहिले एकांत निर्जन स्थान में बैठ कर जापक को प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि "आज इतनी संख्या में जप करूंगा, पूर्ण किये बिना किसी दशा में भी उसे न छोड़ूंगा" इस प्रतिज्ञा को प्रातः सायं दोनों समय करना चाहिये, अन्य समय में भी अपनी प्रतिज्ञा का ध्यान रखना चाहिये। यदि इतना प्रयत्न करते हुए भी विघ्न उपस्थित हों, तो यह विचार करते हुए कि "मैं अपनी प्रतिज्ञा तोड़ कर पातकी बनना चाहता हूं" अपने को धिक्कार दे। ऐसा निरन्तर करते रहने से मन में ग्लानि उत्पन्न हो कर अपनी की हुई प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने की मन में भावना उत्पन्न हो जाती है, जप करने में मन लगने लगता है।

जप करने में निम्न लिखित विघ्न उत्पन्न होते हैं, इनका ध्यान रखना चाहिये।

(१) व्याधि (२) स्त्यान (३) संशय (४) प्रमाद (५) आलस्य (६) अविरति (७) भ्रांति-दर्शन (८) अलब्ध भूमिकत्व (९) अनवस्थित पन। ये चित्त के विक्षेप करने वाले विघ्न हैं, उपरोक्त विक्षेप चित्त की वृत्तियों के साथ मिल कर विघ्न करते हैं। यदि चित्त की वृत्तियाँ रोक दी जाती हैं, तो ये विघ्न बाधक नहीं होते।

"विक्षेपों की व्याख्या"

(१) व्याधि—रोगों से शरीर का वीर्य तथा रस बिगड़ने से कष्ट होना।

(२) स्त्यान—चित्त में कुकर्म करने का विचार आना अथवा कर्म छोड़ बैठना।

(३) संशय—अच्छे कर्मों के लिये चित्त में सन्देह उठना, कि कर्म करूं या न करूं।

(४) प्रमाद—ईश्वर भजन का कभी चिन्तन भी न करना।

(५) आलस्य—शरीर अथवा चित्त की स्थूलता से शुभ कर्म न करना।

(६) अविरति—विषयों के संसर्ग से चित्त का आत्मा को मोहित कर देना।

(७) भ्रांति-दर्शन—कुछ का कुछ समझना, सत्य को असत्य, असत्य को सत्य जानना।

(८) अलब्ध भूमिकत्व—भजन के लिये स्वच्छ एकांत स्थान प्राप्त न होना।

(९) अनवस्थितपन—स्वच्छ एकान्त स्थान मिलने पर भी भजन में मन न लगना।

दृढ़प्रतिज्ञ हो कर नित्यप्रति जप करने से कुछ दिनों में यह विघ्न अपने आप शान्त हो जाते हैं। इस कलिकाल में हठ-योग से समाधिस्थ हर एक मनुष्य नहीं हो सकता। प्रथम तो योगी गुरु ही नहीं मिलते, यदि खोजने पर मिल भी जावें तो मनुष्यों में श्रद्धा नहीं है, यदि किसी प्रकार श्रद्धा भी हो जावे तो अशुद्ध खाद्य पदार्थों के खाने से शरीर और मन अशुद्ध हो गये हैं, इसलिये इस समय हठ-योग की सिद्धि एक प्रकार से असम्भव ही है, बस ईश्वर-प्राप्ति का सुगम मार्ग प्रतीत होता है, तो ईश्वर नाम का कीर्तन और जप जैसे कि परमहंस स्वामी रामकृष्ण महाराज की समाधि हरिनाम कीर्तन ही से हो जाती थी। कीर्तन का सूक्ष्म तथा उत्तम जिह्वा को स्थिर रख कर केवल मन से जप करना, स्थूल दृष्टि से जप करने से जापक को सिद्धि प्राप्त हो जाती है, जिससे कि मनुष्य लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के लाभ उठा सकता है, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है, प्रेय या श्रेय किसी मार्ग को ग्रहण कर ले।

कुसुम-चयन ।

रंगों का मस्तिष्क पर प्रभाव ।

डाकृर पोलोडस्की ने अपनी पुस्तक 'दी डाकृर प्रेस क्राइम्स कलर' नामक पुस्तक में एक मजेदार बात कही है। उनका मत है, कि श्वेत वस्त्र धारण करने वाली लड़कियों को, काले वस्त्र धारण करने वाली लड़कियों की अपेक्षा आसानी से वर मिल जाते हैं। डा० पोलोडस्की ही नहीं, दूसरे बहुत से विशेषज्ञों का भी यही कहना है, कि रंग का शरीर और मस्तिष्क दोनों ही पर प्रभाव पड़ता है। डाकृरों ने पता लगाया है, कि नीले कमरों में रखे जाने वाले रोगी चमकदार और खूब सजे हुए कमरों की अपेक्षा अधिक सरलता पूर्वक सोते हैं और उन्हें आराम भी जल्दी होता है। किन्तु यह बात गमजदा रोगियों के सम्बन्ध में नहीं है। उनके आस-पास उज्ज्वल और मनोमुग्धकारी वस्तुऐं रहनी चाहिये। इस बात की परीक्षा लन्दन के एक विशेषज्ञ ने हाल ही में की थी। उसने बम से आहत सैनिकों को एक उज्ज्वल और रोशनीदार कमरे में रखा, जिसके फल स्वरूप वे शीघ्र अच्छे हो गये।

काले रंग से उदासी फैलती है। एक बार विलायत के 'ब्लेक फ्रैअर्स' नामक पुल को काले रंग से रँगवाया गया। फल यह हुआ कि बहुत से आदमियों ने उस पर से कूद कूद कर आत्म हत्याऐं कीं! इस पर पुल को हरा रँगवाया गया, तब जाकर आत्म-हत्याओं की संख्या घटी।

प्रेत कैसे रहते हैं?

इंगलेंड में लेडी फ्लारेन्स वैरेट नाम की एक प्रसिद्ध लेडी डाकृर हैं, जो पिछले १२ वर्षों से अपने मृत पति से सन्देश प्राप्त करती रही हैं। उनके पति सर डबल्यू आफ बेरेट, डबलिन के रायल कालेज में प्रोफेसर थे। उनकी मृत्यु सन् १९२५ में हुई थी। उन्हें अन्तर्जगत् की बातों पर विश्वास था और अपने जीवनकाल में उन्होंने इस विषय में खोज करने के लिये एक संस्था भी स्थापित की थी।

लेडी वैरेट ने अपने पति की आत्मा से एक बार उनके लोक के खान-पान और रहन-सहन के विषय में कुछ पूछा था, उसके उत्तर में सर विलियम वैरेट ने बतलाया—"मैं कुछ खाता या पीता नहीं हूं। मेरे शरीर के चर्म छिद्रों से पोषक तत्व अपने आप पहुँचते रहते हैं। रहने का घर करीब करीब बिलकुल वैसा ही है, जैसा कि पृथ्वी पर था। मैं कपड़े भी पहनता हूँ। हम लोग कपड़े अपनी इच्छा मात्र से उत्पन्न कर लेते हैं। मैं सूट पहनता हूँ, क्योंकि मुझे उसमें आराम मिलता है। लेकिन अगर मैं चाहूं तो दूसरा कोई भी वस्त्र पहन सकता हूं। हर आदमी अपने अपने पेशे का काम करते हैं, ऐसा करने में वह कुछ समय तक खुश रहता है।"

लेडी वैरेट का कहना है कि कभी मेरे पति अपने सन्देशों द्वारा मेरे डाकृरी के काम में भी मदद पहुंचाते हैं। एक बार उन्होंने मेरे स्वास्थ्य सुधार के लिये क्या भोजन उपयुक्त होगा, यह बताया था।

पूर्व जन्म की स्मृति ।

कन्नौज के एक सम्वाददाता लिखते हैं, कि मौजा भाटन की सरैया तहसील कन्नौज में ता० २६ अप्रैल सन् १९३६ को पं० छक्कूलाल दरोगा अपनी जमींदारी में बन्दूक से मारे गये थे और जला दिये गये थे। अब सरैया के पास ही मौजा रामपुर में उनका पुनर्जन्म हुआ है। वहाँ के पं० उजागर लाल का ४ वर्षीय बालक भगवानदीन कहता है, कि मेरा बाप छक्कूलाल दरोगा है और मेरा मकान भाटन सरैया में है। बालक को उस गाँव में लेजा कर छोड़ा गया तो उसने अपना मकान तथा सभी बच्चे पहचान लिये तथा बहुत सी बातें बतलाईं। उसने कहा कि मैं गढ़िया में सो रहा था कि 'किसी ने मुझे बन्दूक से मार डाला और एक काँटा मेरे मस्तक पर मारा तथा मुझे जला दिया गया।' बालक के शरीर पर गोली का और मस्तक पर कांटे का निशान भी है।

क्या यह सच है ?

अखण्ड ज्योति के पाठकों के कुछ पत्र नीचे दिये जाते हैं। अब तक हमारे पास इस प्रकार के कितने ही पत्र आ चुके हैं। संकोच वश अभी तक हम इन्हें दबाये हुए थे। पर जब बहुत पत्र आये हैं, तो उन्हें पाठकों के सामने रख रहे हैं। हर एक पाठक से अनुरोध है कि वह इस सम्बन्ध में अपने यहां भी जाँच करें, जो अनुभव हो, उसे हमारे पास लिख भेजें। उन्हें 'ज्योति' में छापेंगे। जिससे अन्य पाठक भी लाभ उठा सकें। —संपादक।

(१)

"......मुकदमे बाजी से हम लोग तबाह होगये हैं। पिछले सात वर्षों से हमेशा दो चार मुकदमें फौजदारी आदि के लगे रहते थे, पर जब से अखंड ज्योति हमारे घर में आई है, परिस्थिति बिलकुल बदल गई है। मुकदमों से अब बिलकुल मुक्ति मिल गई है। —केशवनरायन भटनागर, भिमसार।

(२)

"......मेरी उम्र इस समय ३२ साल है। पहला विवाह १२ वर्ष की उम्र में हुआ था, जब बीस वर्ष उम्र तक कोई सन्तान न हुई तो पिता ने मेरा दूसरा विवाह कर दिया। किन्तु दोनों स्त्रियों से अब तक कोई सन्तान न हुई थी। सारा घर दुखी था। अखण्ड ज्योति जब से मँगाई, तब से घर में बहुत खुशी है। दोनों स्त्रियों को इस समय गर्भ है।

—राजेन्द्रपालसिंह कछवाहा, पटियाला।

(३)

"......हम दोनों स्त्री, पुरुषोंमें कभी नहीं पटी। सदा कलह रहता था। जैसे तैसे तीन सन्तानें तो होगई हैं, पर आप सच समझिये हम विवाहित होते हुए भी रडुआ और रांड रहे हैं। न जाने ईश्वर की क्या कृपा हुई है कि इस साल घर वाली का स्वभाव बदल गया है। अब मैं अपने को विवाहित अनुभव करने लगा हूँ। अखण्ड ज्योति का मँगाना हमारे यहां शुभ हुआ। —गोमती नन्दन, डाकोर

(४)

"...... मैं ऐसी परिस्थितियों में रहा हूँ, जिन्हें वर्णन करके आपका भी दिल दुखाना नहीं चाहता। बस मृत्यु को छोड़ कर और सब कष्ट मेरे ऊपर समझें। तीन वर्ष तीन युग की बराबर काटे हैं। पर अब धीरे धीरे सभी स्थितियाँ सुधरी जाती हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि कोई फाँसी पर से उतार रहा है। क्या यह आपकी सहायता है ?

—अयोध्याप्रसाद माथुर, सूरत।

(५)

"......हमारे यहाँ मठ पर दश वर्षों से सत्संग और नियमपूर्वक आध्यात्मिक साधन होता है। होली पर अघोरी कुवलियानन्द जी आये थे। उन्होंने अखण्ड ज्योति को अखीर तक पढ़ा था और कहा था कि इस कागज में ऐसे भाव भरे हुए हैं कि जहाँ यह रहेगा, मौज करेगा। सो आप पन्द्रह अखबार भेज दीजिए, हम लोग अपने अपने घरों में रक्खे रहेंगे। —शंभुचरण गंगोली, गोपालपुर।

(६)

"......ऐसे लेख मैंने बहुत पढ़े हैं। इस प्रकार केविचारों वाली हिन्दी और अँग्रेजीकी सैकड़ों पुस्तकें पढ़ चुका हूं। परन्तु अखण्ड ज्योति में कुछ विशेष आकर्षण है। पढ़ते समय ऐसा मालूम पड़ता है कि एक एक शब्द पेट में इठता हुआ उतर रहा है। अवश्य ही आपकी आन्तरिक प्रेरणाऐं हमारे ऊपर सीधा आघात करती हैं।

—ए० एम० डागा, बलरामपुर।

(७)

"......सोच रहा था पास में कुछ नहीं है। अखण्ड ज्योति का चन्दा चुक गया, अब कहां से भेजूँ। अकस्मात एक ऐसे मनुष्य ने लाकर २) रु० दिये, जिससे मिलने की कोई उम्मेद न थी। चार वर्ष पहले वह उधार लेगया था। मांगने पर लड़ता था, पर बिना माँगे यह रुपया आजाने पर मुझे बड़ा अचंभा हुआ। शायद अखण्ड ज्योति के भाग्य ने जोर मारा है। इस साल का चन्दा भेज रहा हूँ।

—गनपतिलाल बर्मा, मुचकंदगढ़।

एक भावना

कर्त्तव्य–पालन ।

(ले० श्री आनन्दकुमार चतुर्वेदी "कुमार" छिबरामऊ)

शिशिर का अन्त तथा बसंत का आगमन था, वृक्षों की पत्रावली पीली पड़कर वृक्षों से बिछुड़ रही थी। इसे देखकर मेरे हृदय में यह भावना उत्पन्न हो रही थी कि जो पत्ते साल भर से एक साथ रहकर परस्पर आमोद-प्रमोद कर रहे थे, तथा उनका पालन पोषण एक साथ ही हुआ था, काल की गति से अब बिछुड़ रहे हैं। यह दृश्य देखकर मेरे हृदय को अत्यंत दुःख हुआ, मुझसे न रहा गया। मैं उन पृथ्वी पर पड़े हुये पत्तों के समीप गया कि ऐ पत्तो ! तुम्हें अपने भाइयों से बिछुड़ते हुये दुःख नहीं होता, उन्होंने उत्तर दिया कि संसार में अपने कर्त्तव्य को पालन करने में कहीं दुःख होता है ? चाहे मृत्यु को भी हँसते हँसते क्यों न आलिङ्गन करना पड़े।

क्या यह सत्य है ? मुझे उन पत्तों का उत्तर सुनकर संतोष नहीं हुआ, मैं अपने प्रश्न का उत्तर पाने के लिये आगे बढ़ गया, मार्ग में सहस्रों चींटियाँ इधर से उधर दौड़ती हुई दिखाई दीं, जो बेधड़क अपने कार्य में व्यस्त थीं। अनेकों मनुष्य तथा पशु उनके ऊपर पाँव रखकर निकल रहे थे, बहुत सी चींटियाँ अपने प्राण गँवा चुकीं थीं, इस दृश्य को भी देखकर मेरे हृदय में अत्यंत वेदना हुई। मैंने एक चींटी को रोक कर पूछा कि–चींटी रानी, तुम इस प्रकार निर्भय होकर दौड़ रही हो, तुम्हारे ऊपर सैकड़ों मनुष्य तथा पशु अपने पाँव रखकर कुचलते हुये, निकल रहे हैं। तुम्हारे साथ की बहुत सी चींटियाँ मर चुकी हैं, सम्भव है कि इसी प्रकार किसी समय तुम्हारी भी मृत्यु हो जावे, परन्तु तुम्हारे मन में इसका भय तनिक भी नहीं मालूम होता।

मैंने उस चींटी से भी यही उत्तर पाया कि संसार में जन्म लेकर अपने कर्त्तव्य–पालन में मृत्यु से नहीं डरना चाहिये।

इन दोनों दृष्टांतों से मेरे हृदय को सन्तोष हुआ, संसार में जो प्राणी कर्त्तव्यपालन में परायण हैं, सचमुच संसार संग्राम में वही विजय पाते हैं, जो करना चाहते हैं, कर दिखाते हैं।

अद्यैव मरणमस्तु वा युगान्तरेवा ।
कर्त्तव्य पथ विचलन्ति पदं न धीराः ॥

चाहे आज ही मृत्यु होजाय, चाहें युगों तक जियें परन्तु धीर पुरुष कर्त्तव्य से विचलित नहीं होते।

पवित्रता

(ले० श्री० तुलसीराम शास्त्री, सितारी)

परापवादा श्रवणं परस्त्रीणामदर्शनम् ।
एतच्छौचंश्रोत्र दृशोर्जिह्वा शुद्धिरपैशुनम् ॥

दूसरे की निन्दा सुनने में चित्त न देना, पर स्त्रियों को अनुचित दृष्टि से न देखना यह श्रवण और नेत्रों की शुद्धि है और चुगलखोरी, असत्य, रूखे वचन और व्यर्थ के वार्तालाप से बचना यह जिह्वा की शुद्धि है।

अप्राणी वधम मस्तेयं शुचित्वं पाद हस्तयोः ।
अश्लेष परस्त्रीणां शारीरं शौच मिष्यते ॥

हिंसा से बचना, पैर की पवित्रता, चोरी न करना हाथ की पवित्रता है, पर स्त्री गमन, से बचना शरीर की पवित्रता है।

स वाह्याभ्यन्तरं शौच मेतदुक्त मशेषतः ।
सर्वस्मादधिकं प्रोक्तमर्थ शौचं स्वयंभुवा ॥

यह बाहिरी भीतरी सम्पूर्ण पवित्रता कही, परंतु सब प्रकार की पवित्रताओं से अधिक पवित्रता ईमानदारी के साथ पैसा पैदा करना है।

अन्यत्र भी लिखा है—

सर्वेषामेवशौचाना मर्थ शौचं परंस्मृतम् ।
योऽर्थे शुचिहि सशुचिर्न मृद् वारि शुचिः शुचिः ॥
शौचाना मर्थ शौचं च (पद्म पु० पाताल खंड ५ । ८६ । ६६)

अर्थात्–सारी पवित्रताओं में धन सम्बन्धी पवित्रता (नेक कमाई से पेट भरना) बड़ी है।

समय का मूल्य

(श्री, मंगलचंद जी भंडारी, अजमेर)

एक विद्वान का कथन है, कि समय के सिर पर आगे की तरफ बड़े बड़े बाल हैं, और पीछे की ओर खोपड़ी गंजी है। यदि आगे से उसके बालों को पकड़ लिया जाय तो वश में आजायगा और सहायता करेगा। परन्तु यदि उसे चला जाने दिया जाय तो पीछे से उसे किसी प्रकार नहीं पकड़ सकते।

मनुष्य जीवन में समय ही सबसे मूल्यवान वस्तु है, जो उसका ठीक प्रकार उपयोग कर लेता है, उसका जन्म सार्थक हो जाता है अन्यथा हाथ मल मल कर पछताना ही शेष रह जाता है। बहुत से लोग इस फिकर में रहते हैं, कि कोई अच्छा मौका मिला, तो यह काम करेंगे। परन्तु जो समय की कदर नहीं करता वह मौके को भी नहीं पहचान सकता और अपने आलसी स्वभाव के कारण उसे गँवा देता है। भाग्योदय के लिए सब से अच्छा उपाय यही है, कि अपने जीवन की एक एक घड़ी का ठीक उपयोग किया जाय। यदि रोज रोज असफलता मिलती है, तो एक दिन सफलता का अवसर भी आवेगा।

आस्ट्ले नामक एक बहुत विख्यात डाक्टर हो गये हैं। आरंभ में वह बड़ी उम्र तक यों ही फिरता था। एक दिन वह बाजार में जारहा था तो देखता क्या है, कि सामने एक लड़का मोटर से कुचल गया और उसकी नस टूट गई। खून बहुत बह रहा था। आस्ट्ले ने यों ही उसकी नस बाँध दी जिससे खून रुक गया और लड़का अच्छा हो गया। इस घटना से उसे उत्साह मिला और चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन करने लगा अन्त में वह एक बड़ा सिविल सर्जन हुआ। संसार में जो भी महापुरुष हुए हैं, उन्होंने अपने जीवन की एक एक घड़ी का ठीक उपयोग किया है। कितने दुख की बात है, कि हम लोग अपने अमूल्य समय को यों ही व्यर्थ बातों में गँवाते रहते हैं, और अन्त में निष्फल जीवन लेकर संसार से कूच कर जाते हैं।

मां और बेटा

(ले० स्व० गिजू भाई)

माताऐं बच्चों को गलती दिखलाते समय उसके मूल में रही हुई अपनी गलती नहीं देखतीं।'

माँ—'लेकिन तू सीधी तरह खड़ा रह। यों उछल कूद क्यों करता है?

बेटा—'मुझे सर्दी लगती है। मुझसे खड़ा नहीं रहा जाता।'

* * * *

माँ—'कुर्ता पहनते देर न हुई और निकाल डाला? तू कैसा है रे?'

बेटा—'माँ कुर्ते में तो चींटी थी। देखो चींटी ने मुझे काट लिया!'

* * * *

माँ—'देखा, तैने रकाबी को गिरा दिया और फोड़ डाली न?'

बेटा—'मैंने नहीं गिराई। रकाबी ही चिकनी थी, फिसल कर गिर पड़ी।'

* * * *

माँ—अरे दैया! अब क्या करूं? इसने तो कपड़े के टुकड़े टुकड़े कर डाले?'

बेटा—'बहुत टुकड़े तो नहीं किये। सिर्फ दो ही टुकड़े हैं। मुझे पैरों में पट्टी बाँधनी है।'

* * *

माँ—'यूँ लोट पोट क्या करता है? तुझे सोने भी नहीं आता?'

बेटा—'माँ, ये कान के पास आकर जो गुन-गुन करते हैं, तू आकर सुनती नहीं?'

* * * *

माँ—'अरे तू कब तक खेलता रहेगा? तुझे कुछ नहाने को भी सुध है?'

बेटा—तुम्हीं ने तो कहा था कि जब बुलाऊँ तब आना। तुमने मुझे कभी पुकारा भी था? या ही झुल्लाने बैठ गई!'

* * * *

माँ—'कैसी वाहियात आदत है रे? दो कोर नहीं खाये और पानी ढाँसने बैठ गया।

बेटा—'लेकिन मां साग में इतनी मिर्चें हैं, कि मुँह जला जाता है। जरा तुम चखो तो?'

—'शिक्षण पत्रिका'

कविता कुंज

माया।

(ले०- श्री गिरधर चतुर्वेदी, अलीगढ़)

सुन्दर महिमा जीवन की जो अति पुनीत दिखलाती।
माया पर उसे सदा ही निज पाश फैंक उलझाती॥
वैभव का लालच देकर भोले मनको तरसाती।
कितने हा दंभ दिखाकर हम जीवों को फुसलाती॥
इस माया ने भरमाया तपसी ऋषियों मुनियों को।
नर,नारी,नरपतियों को कवियों, वीरों,गुणियों को॥
कोई भी ऐसा है जो;
माया में नहीं फंसा हो ?
"गिरिधर" सौभाग्य उसी का
गिरिधर जिस हृदय बसा हो॥

मन से।

ले०-मास्टर उमादत्त सारस्वत, कविरत्न (बिसवां,सीतापुर)

एरे मन, दौड़ा जाता व्यर्थ मृग तृष्णिका में,
विश्व है, रे विश्व ! लोग तुझे बहकावेंगे।
छोड़ के पुनीत-रीति माधव-प्रतीत की हा !
भटका फिरेगा कोई राह न बतावेंगे।
चारों ओर चकित, थकित हो भ्रमेगा हाय !
दारा, सुत, बन्धु भी तो काम नहीं आयेंगे !
प्रेम से मना ले, अपना ले नटनागर को,
वे ही दीन बन्धु, तेरी बिगड़ी बनायेंगे।

समालोचना

स्प्रिचुअलिज्म इन इण्डिया (अंग्रेजी में)
ले० श्री बी० डी० ऋषि, बी० ए०, एल० एल० बी०
प्राप्ति स्थान—इण्डियन स्प्रिचुअलिज्म सोसाइटी ५१ गोरधनदास बिल्डिंग, गिरगाँव, बम्बई। मूल्य २) कागज, छपाई, जिल्द सभी सुन्दर।

श्री बी० डी० ऋषि परलोक विद्या के प्रकाण्ड पंडित हैं। आपने इस तत्व की पर्याप्त खोज की और प्रेतों का साक्षात् करने में सफलता प्राप्त की है। आपने इसी खोज के सम्बन्ध में विदेशों की यात्रा की है और अन्तर्राष्ट्रीय परलोक विद्या कांग्रेस में भारत के प्रतिनिधि की हैसियत से शामिल रहे हैं। यह पुस्तक आपके अनुभवों का सार है। प्रेत तत्व के सिद्धान्त एवं उनके सांसारिक मनुष्यों के साथ होने वाले संपर्क के सम्बन्ध में इसमें बहुत कुछ बताया गया है। जिज्ञासुओं के काम की चीज है।

'श्री बसन्त कृष्णायन'—रचियता—श्रीयुत बसन्तराम जी महाराज, प्रकाशक श्री श्याम सनेही श्यामाशरण जी,हैदराबाद (सिन्ध) अठपेजी साइज़ के १६०० पृष्ठ। अनेक बहुरंगे चित्रों से सुसज्जित, कागज, छपाई बढ़िया, कपड़े की जिल्द मूल्य ६)

पुस्तक के लेखक सिंध प्रान्त के एक उच्च कोटि के साधक महात्मा थे। यह आपकी अमूल्य कृति है। समस्त पुस्तक ६ द्वार में विभाजित है। श्रीराधाकृष्ण, गोलोक, श्री वृन्दावन, गिरिराज, गोपिका, मधुपुरी, द्वारावती, बल्देव और विज्ञान द्वार हैं। भगवान श्री कृष्ण के ललित एवं लीलामय जीवन का सुन्दर, सरस, सुबोध, दोहा,चौपाइयोंमें एक अनुपम एवं जीता जागता चित्र; विद्वान लेखक ने धार्मिक जगत को प्रदान किया है। आशा है भगवान कृष्ण के भक्त इस अमूल्य पुस्तक को श्री रामायण की भांति ही शीघ्र अपनावेंगे।

'अखण्ड ज्योति' के ग्राहकों को पौने मूल्य में ही मिलसकेगा, डाक व्यय प्रथक। इसकी प्राप्ति के लिये सम्पादक 'नाम-माहात्म्य'वृन्दावन,यू० पी० को लिखना चाहिये।